- नानेश वाणी – 23

  नव निधान

- आचार्य श्री नानेश

- सस्करण मई 2003, 1100 प्रतिया

- मूल्य 30/–

- अर्थ सहयोगी

  श्री बालचन्द जी कुसुम कुमार जी सेठिया, भीनासर

- प्रकाशक

  श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ

  समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर (राज)

  फोन 2544867, फैक्स 0151 2203150

- मुद्रक

  कल्याणी प्रिण्टर्स

  अलख सागर रोड, बीकानेर

  दूरभाष 151–2526890

प्रकाशकीय

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरूष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियों में है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखाई जिस पर चल कर भव्य आत्माए अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी वन सकती है। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है तथापि उनके द्वारा विरचित साहित्य के रूप में उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है जो सासारिक प्राणियों को लियें प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता रहेगा। इस स्तभ से विकीर्ण होने वाली प्रकाश रश्मिया युगों-युगों तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे इसके लिए यह आवश्यक्ता है कि न तो उन साहित्य रश्मियों को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन् आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनों हित उनकी सुलभता सुनिश्चत रखी जायें। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को "नानेश वार्ण" पुस्तक शृखला के अर्न्तगत प्रकाशित करने का निर्णय किया।

इस सदर्भ में बैंगलोर निवासी सुश्रावक श्री सोहनलालजी सिपानी ने अर्थ सवधी व्यवस्था में जो सद्प्रयत्न किया वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत कृति पूर्व में नव निधान नाम से प्रकाशित पुस्तक की नयी आवृत्ति है। इसमें कुछ सशोधन परिसस्करण भी हुआ है। इस कृति के प्रकाशनार्थ अर्थ प्रदान करने वाले उदारमना सुश्रावक श्री बालचन्द जी कुसुम कुमार जी सेठिया, भीनासर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना भी अपना दायित्व समझता हू।

यद्यपि सम्पादन-प्रकाशन मे पूरी सावधानी रखी गई है तथापि कोई भूल रह गयी हो तो सुधी पाठकों से निवेदन है कि वे हमें अवगत करायें ताकि आगामी सस्करणों में भूल का परिमार्जन किया जा सके।

निवेदक

शातिलाल साड

सयोजक साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ भा सा जैन सघ समता भवन, बीकानेर।

अनुक्रमणिका

1	गहन नयवाद	1
2	ज्ञानशक्ति का विकास	16
3	सम्यग्ज्ञान की आराधना	30
4	अणु से विराट की ओर	44
5	दर्शनमोह	61
6	चारित्रमोह	75
7	आत्म–अर्पण	88
8	तृष्णा की आग	103
9	दुर्व्यसन का चगुल	118

गहन नयवाद

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये, सहु थापे अहमेव।। 1 ।।
सामान्ये करी दरिशण दोहिलु , निर्णय सकल विशेष,
मद में घेरयो रे अधो केम करे, रवि शशि रूप विलेख।। 2 ।।
हेतु विवादे हो चित्त धरी जोईये, अति दुर्गम नयवाद,
आगमवादे हो गुरगम को नहीं, ए सबलो विषवाद।। 3 ।।

ये अभिनन्दन जिन भगवान् की प्रार्थना की कडियॉ हैं। वस्तुत जिनका जीवन अभिनन्दनीय है, जगत् के लिए आदरणीय है, प्रत्येक भव्य आत्मा के लिये आदर्श है, ऐसे अभिनन्दन भगवन् के दर्शन की अभिलाषा रखना भव्य प्राणियो के स्वरूप के अनुरूप ही है। लेकिन अभिनन्दन भगवान् ने जो अपने दर्शन के स्वरूप जनता के सामने रखा वह स्वरूप प्रत्येक प्राणी के लिए सम्यक् श्रद्धा की भावना से ग्रहण करने योग्य है। प्रभु अभिनन्दन के दर्शन ऐसे तो कठिन वतलाये गये हैं क्योकि उस तरीके के मार्ग बताने वालो की कमी है। कवि की कल्पनाए उस दर्शन के स्वरूप को समझाने की तरफ दोडती हैं पर साथ ही वह उलझन मे पड जाता है। क्योकि दुनिया के अन्दर कई व्यक्ति ऐसे हें जो एकान्त दृष्टिकोण से स्वय के अहकार की पुष्टि के लिए बोलते हैं कि अभिनन्दन भगवान् का मार्ग हमारे पास है। उस मार्ग पर तुम चलोगे तो एक रोज उनके दर्शन कर पाओगे। ऐसे एक नहीं, कई व्यक्ति अपनी–अपनी अह भावना का

पोपण करने के लिए कहा करते है और जन–साधारण का मस्तिष्क उन वादो के अन्दर उलझ भी जाता है। क्योकि एकान्तवादी कथन करने वाले पुरुष भी अपने मत की पुष्टि के लिए कई हेतु और तर्क दे डालते हैं। व्यक्ति उस तर्कवाद मे फस करके सही चीज का पता नही लगा पाता और एकान्तवादी की मनमानी चलती रहती है। इसलिये अन्तर की स्फुरणा बोल उठती है –

हेतु विवादे हो चित्ता धरी जोईये,
अति दुर्गम नयवाद।
आगमवादे हो गुरुगम को नही,
ए सबलो विषवाद।।

उस एक–एक दृष्टि को लेकर चलने वाले पुरुषो के तर्कवाद होते हैं। हेतु के साथ तर्क लगता है तर्क के साथ वे कारण देते हैं। हेतु, तर्क और कारण, इन तीनो का प्रयोग प्राय मनुष्य अपनी बुद्धि की तीव्रता बताने के लिये किया करता है। यदि ये तीनो चीजे निरहकार और अनेकान्त दृष्टिवाले के पास है तो वे प्रभु के मार्ग की ओर मोडने वाली बन जाती है। और यदि अहकारी मनुष्य के पास है तो अहकार के साथ एकान्तवादी है। एकान्त दृष्टि दुनिया को किसी भी पलडे पर लगने नही देती। मस्तिष्क को इस प्रकार लथेडती है

तुम्हे जो रास्ता बताऊ उससे तुम्हारी आत्मा विकसित हो जायगी तो वे भी प्राय उसके कथन मे आकर चकरा जाते हैं। फिर साधारण लोग जो इतने पढे–लिखे नही होते वे यदि मान ले तो इसमे आश्चर्य ही क्या ? वे प्राय यही सोचते हैं–उस आदमी ने मान लिया तो हम भी क्यों न मानें ? अगर तथ्य नहीं होता तो इतने बडे आदमी कैसे मानते।

पर साधारण लोगो को यह पता नही कि आध्यात्मिक दृष्टि से वे तुम्हारे ही भाई हैं। भौतिक दृष्टि व अक्षरीय ज्ञान की दृष्टि से भले ही वे विद्वान बन गये, डिग्रीये प्राप्त कर ली पर आध्यात्मिक दृष्टि से वे कभी जीरो भी हो सकते हैं। बल्कि इस माने मे कभी–कभी साधारण व्यक्ति इन उपाधिधारियो से आगे बढे हुए भी हो सकते हैं। अत एकान्तवाद मे मानव उलझे नहीं इसलिए सकेत दिया है–'हेतु विवादे हो चित्त धरी जोईये, अति दुर्गम नयवाद।'

नयवाद को समझना सरल नही है। बडा दुर्गम है। नय की बातो को रट लेना एक अलग बात है पर उनको हृदयगम करना दूसरी बात है। सात नय के नाम हर कोई व्यक्ति याद कर लेगा पर उनका प्रयोग कहा कहा होता है उसका पता शायद कइयो को नहीं रहता। शास्त्र मे आगम दृष्टि से वर्णन आया हे। वहा विद्वानो ने भावो को समझाने की जो चेष्टा की है वह नयो के साथ की है।

भगवान् महावीर की वाणी सात नयमय होकर वस्तु के सत्य स्वरूप को प्रतिपादित करती है। यदि नय का स्वरूप सामने नही हो तो व्यक्ति आगम वाक्य से भी उलझ सकता है। आप सुनते हैं–

तेण कालेण तेण समएण रायगिहे णाम णयरे होत्था, सेणियनाम राया होत्था, चेलणादेवी, गुणसिलाए चेइए, बण्णओ।। 1 ।।
तेण कालेण तेण समएण रायगिहे नयरे अज्जसुहम्मस्स समोसरण, परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ परिसा पडिगया।। 2 ।।

अनुत्तरोववाइयदशाग सूत्र

अब यहा शास्त्र के वाक्य को लेकर यदि कोई आजकल का तर्कवादी एकान्तवादी आपके सामने आकर खडा हो जाय ओर पूछे कि–बोलो साहब ये वाक्य किसने कहे ? तो उत्तर दोगे–भगवान महावीर ने कहे। वह कहता है–भगवान् महावीर ने किस समय

फरमाये ? साहब, यह तो पता नही। सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी को कह रहे है। वह तर्कवादी कहेगा–सुधर्मा स्वामी ने यह बात कही है तो वे किस समय मे थे ? आप कहेगे–भगवान् महावीर की उपस्थिति मे थे। तर्कवादी आगे कहेगा–अच्छा साहब, भगवान् महावीर और सुधर्मा स्वामी समकालीन हुए। उस समय भगवान् किसी भी विद्यमान नगर का निर्देश करते है तो 'होत्था' कैसे कहा यानि नगर था कैसे कहा ? यह तो भूतकाल की क्रिया है।

क्रिया आप जानते है भूत, भविष्य और वर्तमान काल की यो कालभेद से तीन प्रकार की होती है। यहा भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया यानि पूर्व मे था। ऐसा क्यो नही कहा कि 'है'। क्या वर्तमान मे नगर नही रहा ? 'नगर है' ऐसा करना चाहिये था। देखो साहब, इनकी बात मे प्रत्यक्ष से ही विरोध आ रहा है तो यह बात कैसे मानी जाये। जैसे वर्तमान मे 'मन्दसौर है' कहा जायगा, लेकिन वर्तमान मे कोई बोल उठे 'मन्दसौर नगर था' तो क्या यह ठीक है ? साधारण भाई चक्कर मे पड जाएँगे कि बात तो ठीक है। जम्बू स्वामी को समझाते हुए सुधर्मा स्वामी को यह कहना चाहिये था कि इस समय राजगृही नगरी है। यह नगरी है यह नही आया बल्कि 'थी' (होत्था) यह शब्द आया। इससे मालूम होता है कि शास्त्र लिखने वालो को भूत, भविष्य, वर्तमान की क्रियाओ का भी पूरा ज्ञान नही था। यह ज्ञान तो आज के विद्यार्थियो को भी होता है और जिनको भगवान् कहते हैं उनको इन क्रियाओ का भी ज्ञान नही। यह प्रत्यक्ष से विरोध आता है। इसलिए भगवान् पर श्रद्धा कायम रखनी है तो उद्घोषित कर देना चाहिये कि ये शास्त्र भगवान् के कहे नही है। यदि ऐसा घोषित नही करोगे तो भगवान् पर श्रद्धा नही रहेगी, उनका सर्वज्ञत्व नही रहेगा, आदि दलीले देकर कई व्यक्ति जन साधारण को भ्रमित कर सकते हैं। लेकिन इस प्रकार का कथन सात नियमिश्रित शास्त्रवाक्यो का भलीभाति ज्ञान नही होने का परिणाम है।

देखना यह है कि यहा पर राजगृही नगरी के विद्यमान होते हुए भी जो यह वचन कहा गया है कि 'होत्था यानि 'थी' तो वह भी एक नय की दृष्टि से कथन हे। वह असत्य नही है, गलत नही है,

वीतराग वाणी से विपरीत नहीं है। सात नय मे से पाचवे नय वाला कहता है–जिस समय अवस्थान है उस समय 'है' रहता हे पर भूतकाल का नक्शा और होता है। पाचवे शब्दनय वाला कहता है जब भगवान् ने वर्णन किया उस समय भगवान् का समवशरण था। उस समय की राजगृही नगरी 'होत्था' थी। उस काल उस समय मे यानि भगवान् महावीर जव थे उस काल की नगरी की पर्याय दूसरी थी और जव सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा तब वह पर्याय वदलकर दूसरी पर्याय उत्पन्न हो गई थी। इस कारण यहा होत्था शव्द का प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग भी यथार्थ है। इसमे तर्क कर जन साधारण को भ्रम मे नहीं पडना हे। यह नयवाद समझना दुर्गम है।

इसी नयवाद को लेकर भगवान् के मार्ग मे बाधा पैदा करते हैं और साधारण व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार अहभावी एकान्तवादी अपने पक्ष मे मोडने की चेष्टा करते हैं। एक व्यक्ति कहता है–यह सव इस प्रकार के वेश मे बेठना साधु बनना आदि कुछ नहीं है। बस मुँह से उच्चारण कर दिया, भगवान् के दर्शन हो गये। आगे की क्रिया करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मन मे सोच लिया तो हो गये दर्शन। आगे अव जो कुछ भी कर रहे हो, करते रहो, खूब खाते पीते मोज उडाते रहो। तुमने हाथ जोड लिया तो हो गया काम। एक व्यक्ति ऐसा कहता है तो कोई दूसरा बोलता है–अरे, तू गलत कहता है। क्या मुह से बोलने मात्र से काम हो गया ? अगर ऐसा होता तो भोजन भी ऐसा ही होना चाहिये। वह तर्क भी देता है कि जैसे भोजन शव्द का मुह से उच्चारण करने मात्र से पेट नहीं भरता, हाथ मे भोजन लेने से पेट नहीं भरता कल्पना करने से पेट नहीं भरता। ऐसे ही तुम्हारा कहना मिथ्या हे। मैं भगवान के दर्शन करने के लिए वताता हू कि तू वचन, ऑखे कान जीभ शरीर इन सबको एक रूप मे कर ले एकाग्र वन जा। वस एकाग्र बन गया तो भगवान् के दर्शन हो गये। आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं।

पहला वादी कहता हे केवल हाथ जोड लिया वस। पर मैं ऐसा नहीं कहता। मैं तो कहता हूँ–पाच इन्द्रियो को एक रूप मे कर लिया तो भगवान के दर्शन हो गये।

तीसरा कहता है—यह भी मिथ्या है। पॉच इन्द्रियो और मन को एकाग्र करने मात्र से ही भगवान् के दर्शन नही होते। इस प्रकार की एकाग्रता की स्थिति तो डाक्टर भी करता है, वकील भी काम पर बैठता है तो एकाग्र हो जाता है, व्यापारी भी ग्राहक आता है तो एकाग्र बन जाता है। क्या इससे उनको ईश्वर के दर्शन हो गये ? वह कहता है—इससे भगवान् के दर्शन नही होते। मै बताता हूँ वह मार्ग कौनसा है ? किसी भी जीव को सताने की स्थिति नही रहे। भगवान् की भक्ति मे बैठने की दृष्टि से सादी पोषाक, शरीर के ऊपर पहने जाने वाले गहनो का परित्याग, हिसा, झूठ आदि का परित्याग और पूर्ण त्याग की पोषाक जिसमे मुह से भी हिसा नही हो, मुह का थूक भी किसी पर न गिरे, ऐसी त्याग—सूचक पोषाक पहनकर बैठ जाना है। किन्तु तब भी यदि मन इधर—उधर हो गया तो क्या दर्शन हो जायगा ?

चौथा कहता है—ऐसा तो बहुरुपिया भी कर लेता है। बहुरुपिया को आप जानते हैं ? जो विभिन्न पोषाके पहनकर स्वाग बनाता है। तो चौथा कहता है—मन उस दर्शन मे रहना चाहिये तो भगवान् के दर्शन हो सकते हैं। वह ३.न्दर के विचारो से दर्शन का सम्बन्ध जोडता है।

पॉचवा कहता है—तू दर्शन का स्वरूप नहीं समझता। दर्शन तो मन मे जड का भी किया जाता है। तिजोरी के भी दर्शन किए जाते है। फिर भावना का नाम लिया जाय तो क्या होता है ? यदि उसे भगवान् के दर्शन करने ही है तो अपनी शक्ति लगाने से हो सकते है। ज्ञान की शक्ति का उद्योत करके आत्मा के अन्दर यदि देखने की चेष्टा की जाती है तो भगवान् के दर्शन हो पाते है। इसलिये मै कहता हू सो ठीक है।

छठा कहता है—नही, तू भी गलत है। भाई, जिस ज्ञानशक्ति से आत्मा को देखने की चेष्टा करता है दो मिनिट आत्मा की स्थिति का ध्यान कर लेता है और दस मिनिट उठ जाता है। फिर घण्टे भर बैठता है, फिर उठ जाता है। इस प्रकार भगवान् के दर्शन नही हो सकते। भगवान् के दर्शन करने के लिए स्थायी शक्ति आनी चाहिये। ज्ञान शक्ति एक सरीखी बनी रहे तो दर्शन हो सकते है, और वैसी शक्ति कब होती हे ? जब केवल ज्ञान होता है। केवल ज्ञान होने पर

ही भगवान् के दर्शन किए जा सकते हैं।

सातवा कहता है—इसे भी मैं पूर्ण दर्शन नहीं मानता। क्योकि केवली भोजन करते हैं, चलते है, उठते—बैठते हैं, उपदेश देते हैं। उस समय शुद्ध स्वरूप मे विक्षेप रहता है। दर्शन तो जब हर क्षण, हर समय सिद्ध अवस्था मे रमण किया जावे तब होता है।

सातो वादी अपने—2 अभिमत एक—एक नय को मुख्य मानते हुए ऐकान्तिक प्रतिपादन करते हुए एक—दूसरे को गलत्त बताते हैं और दूसरो का तिरस्कार करते हैं। इस प्रकार वे प्रभु के दर्शन नहीं कर पाते। उनको समझाने के लिए समन्वयवादी महात्मा स्याद्वाद के साथ उनको जोड देगे। वे कहेगे—तुम एकान्त प्रतिपादन करते हो तो गलत है, मिथ्या है। वह भगवान् का मार्ग नहीं, दुनय है, सद्नय नही। यदि सद्नय पूर्वक वीतराग प्रभु के मार्गनुसार भगवान् के दर्शन करना है तो सातो नयो का अपेक्षादृष्टि से समन्वय करना होगा। प्रथम व्यक्ति ने जो कहा वह भी ठीक है। वह मन मे भावना रखता है हाथ जोडता है। यह दर्शन की शुरूआत की भूमिका है। मन मे भावना पैदा नही होगी, हाथ नही जोडेगा तो आगे का क्रम कैसे चढ़ेगा ? पर हाथ जोडने से ही दर्शन हो जायेगे यह एकान्त सोचना गलत है। उसके साथ पाच इन्द्रियो और मन को दर्शन रूप लक्ष्य में जुटाना भी आवश्यक है। अगर प्रथम को ही लेगे और दूसरे को नहीं लेगे तो दर्शन नही हो पायेगे। फिर तीसरा जो कहता है एकाग्रता को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए पोषाक भी पहननी आवश्यक है। वह भी एक दृष्टि से ठीक है। यदि पोषाक पहन कर बैठेगा तो साधना की आगे की स्थितिया ठीक बनेगी। खुला रहा और एकाग्र भी है तो घर का कोई सदस्य हाथ पकड कर उठा भी सकता है। इसलिए पोषाक धारण कर बैठना भी आवश्ययक है। चौथा जो कहता है कि मन को उस दर्शन मे रखना चाहिये वह भी ठीक है। पाचवा भी आगे ज्ञान शक्ति प्रारम्भ मे दो मिनिट जोडते—2 बढायेगा तो धीरे—धीरे चौबीस घण्टे भी ज्ञानशक्ति के साथ देखने लग सकता है। इसलिए इसे भी साथ लेकर चलना है। छठा केवलज्ञानी को मानता है तो केवलज्ञान भी तब होगा जब कि प्रारम्भ से ही विकास करता जायेगा।

उस विकास के बाद ही शरीर छूटने पर सिद्ध स्वरूप अवस्था प्राप्त होगी। उस अवस्था मे भोजन विहार आदि सब छूट जायेगे। लेकिन यह अवस्था प्रथम नय की स्थिति से प्रारम्भ होगी तब आयेगी, बीच मे से नही टपकेगी।

अपने–अपने स्थान पर सब नय महत्वपूर्ण है। एकान्तवादी बन कर किसी मत को पकडना वस्तुत प्रभु के दर्शन मे सहायक नही होगा। सातो नयो को साथ लेकर चलना चाहिये। और अपेक्षादृष्टि से ही वस्तु का प्रतिपादन होता है। जब वस्तु के समग्र रूप को मुख्य करके वर्णन किया जायेगा उस समय पर्याय दृष्टि गौण होगी, और जिस समय पर्याय दृष्टि का वर्णन किया जायेगा उस समय समग्र वस्तुदृष्टि गौण होगी। इस प्रकार नय के सातो भेद भगवान महावीर ने सापेक्ष दृष्टि से बतलाये लेकिन उस दृष्टि को मुख्य रूप से बुद्धिमान पुरुष ही समझ सकता है। अन्य एकान्तवादी पूरा समझ नही पाते। दार्शनिक दृष्टि से कहा भी है –

अपर्यय वस्तु समस्यमानमद्रव्यमेतच्च विविच्यमानम्।
आदेशभेदोदितसप्तभङ्गमदीदृशस्त्व बुधरूपवेद्यम्।।

स्याद्वादमजरी 23 का०

श्लोक मे बताया है कि जहा समग्र वस्तुस्वरूप का चिन्तन किया जाता है वहा पर पर्याय की दृष्टि मुख्य नही रहती। जब उसी वस्तु को सूक्ष्म दृष्टि से सोचने का प्रसग आता है और वस्तु के अन्दर रहने वाले एक एक धर्म का चिन्तन करना होता है वहा फिर पर्याय–दृष्टि प्रमुख बन जाने से वस्तु–दृष्टि गौण बन जाती है। उपयोग की स्थिति से बारीकी मे उतरना पडता है। फिर द्रव्य नहीं रह कर अपेक्षा से पर्याय आ जाता है। जब व्यवहार और निश्चय दोनो सापेक्ष रूप से मुख्य गौण भाव से समझे जाते है तब निश्चय व्यवहार से सर्वथा अलग नहीं पडता और न व्यवहार निश्चय से सर्वथा अलग पडता है।

मैं ज्यादा सूक्ष्मता मे न जाकर आपको इतना ही बता देना चाहता हूँ कि आप प्रभु के दर्शन के लिये एकान्तवादी मतो मे न पडते हुए उनके समन्वय को लेकर चलेगे और अपनी शक्ति को समन्वय के साथ सातो नयो को गौण मुख्य भाव मे समझते हुए यथोचित रूप से

आगे बढेगे तो अपनी शक्ति को केन्द्रित कर प्रभु के दर्शन कर सकेगे।

एक व्यक्ति सोचे–प्रथम कक्षा ही सच है, आगे की कक्षाएँ सब मिथ्या हैं तो क्या ठीक है ? नहीं। दूसरा कहता है–प्रथम कक्षा तो मिथ्या है क्योकि उसे छोडनी पडती है। तो क्या वास्तव मे प्रथम कक्षा मिथ्या है ? नही। अगर ऐसा माना जाएगा तो आप किसी काम मे सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। ग्यारहवीं कक्षा मे जाने वाले को दसवीं कक्षा छोडनी पडती है तो क्या दसवीं कक्षा मिथ्या हो गई ? वह मिथ्या नही हुई। दसवीं का अध्ययन ग्यारहवीं मे काम आता है। एक कक्षा दूसरी के लिए मददगार होती जाती है।

शास्त्रीय दृष्टि से 14 गुणस्थान माने गए हैं। वे एक प्रकार से चौदह कक्षाएँ हैं। चौथे गुणस्थान से आध्यात्मिक कक्षा चालू होती है। पाचवें गुणस्थान मे जायेगे तो चौथा छूट जायेगा। छठे सातवे गुणस्थान मे जाने पर पाचवा छूट जाता है। इसी तरह ग्यारहवे, बारहवे, तेरहवे मे जाने पर नीचे के गुणस्थान छूट जाते हैं। तो क्या सभी गुणस्थान मिथ्या हो गये ? चौदहवे मे गये तो तेरहवा भी छूट जायेगा।

एक सीढी होती है उसकी हर पायरी अपने–अपने स्थान पर महत्वपूर्ण है। पहली पायरी भी आवश्यक है, दूसरी भी आवश्यक है, वैसे ही आखिरी भी आवश्यक है। दूसरी पायरी पर चढेगा तो पहली छोडनी ही पडेगी। यह छोडना यथार्थ है। वास्तविक है। इतना जरूर ध्यान रखना चाहिये कि मजिल पायरी नहीं, मजिल पायरियो से परे है। अगर यह लक्ष्य मे आ गया तो दुर्गम नयवाद मे आप उलझेगे नहीं और महत्वपूर्ण जीवन को साकार करते हुए आगे बढ सकेगे।

मनुष्य को प्रारम्भ से ही अन्त तक चलना चाहिये। वहीं स्थिति वास्तविक होती हैं। माता के सस्कार बचपन मे जैसे आ गये, चाहे वह गर्भ मे ही हो, वे सस्कार व्यर्थ नहीं जायेगे।

सम्यग्दृष्टि जीव, जो नयवाद को समझकर चलता हे,उसका नक्शा कुछ और ही होता है। ऐसे भव्य प्राणी जब माता की कुक्षि मे आते हैं तो माता की स्थिति क्या होती है इसका वर्णन कथाभाग मे आपके सामने चल रहा है। जगल के अन्दर मुनिराज नल को समझा रहे है और दमयन्ती के विषय मे वर्णन कर रहे हैं। दमयन्ती मे जो

शक्ति व्यक्त हुई उसके पीछे क्या कारण है, इसका स्पष्टीकरण महात्मा दे रहे है–

पुष्पदती महारानी, जो कुन्दनपुर मे भीम नरेश की पत्नी थी, अपनी शय्या पर शयन कर रही थी। महारानी को हर समय कोई स्वप्न नही आया करते थे क्योकि उसका मन स्वस्थ था। जिसका मन स्वस्थ (तन्दुरुस्त) रहता है उसको एकाएक बहुत तरह के स्वप्न नही आते। पर जिन मनुष्यो का मन अस्वस्थ है, शरीर मे रोगादि की स्थिति है तो वे प्राय रात मे भयकर स्वप्न देखा करते हैं। डरावने दृश्य और दूसरे–2 दृश्य भी देखते हैं। पर महारानी मन की दशा से स्वस्थ थी। मानसिक दशा विचारो से बनती है। जिनका मस्तिष्क ठीक है, निर्मल है उनका जीवन भी ठीक तरह से चलने मे सक्षम रहता है।

महारानी सुन्दर जीवन की स्थिति को लेकर शान्ति के साथ अपने शयनकक्ष मे सो रही थी कि अचानक उसे एक स्वप्न आया। उसने स्वप्न मे देखा कि एक श्वेतवर्ण हाथी भयकर स्थिति से विह्वल हुआ। राजभवन मे प्रवेश कर रहा है। महारानी स्वप्न मे देख रही थी कि जगल मे दावानल लग गया है और हाथियो का समूह उसमे जल गया है। यह हाथी उस भयकर विपत्ति से बचने के लिए राजभवन मे प्रवेश कर रहा है। वह हाथी महारानी के पास आकर बैठ जाता है। महारानी इस स्वप्न को देखकर सोचने लगी कि मैंने इस प्रकार का दृश्य पहले कभी नही देखा। आज यह स्वप्न क्यो देखा है ? इस स्वप्न के फल की क्या स्थिति है ? नीद भग होने के साथ ही साथ वह स्वस्थ होकर पलग पर बैठती है और प्रभु का ध्यान करती है। इस स्वप्न का क्या अर्थ हे, इसकी अपने पतिदेव से जानकारी तो प्राप्त कर लूँ। वह वहा से उठकर गज–गति के साथ पतिदेव के शयनकक्ष मे पहुचती है।

प्राचीन काल के इस नक्शे को भी ध्यान मे लेने की आवश्यकता हे पहले व्यक्ति किस ढग से चलते थे, यह कथा भाग से आपको देखना है। शयन की दृष्टि से उनके अलग–अलग शयनगृह होते थे। रात्रि के समय वह महारानी स्वप्न को देखकर उठी और महाराज के शयनगृह मे पहुँची। उसके मन मे इस प्रकार का भी ख्याल था कि

मेरे पतिदेव कहीं जग न जाए। यद्यपि आई थी दिल के विचार सुनाने के लिए फिर भी उसमे विवेक था कि महाराजा की सुख–निन्द्रा भग न करू। स्वाभाविक रूप से निद्रा भग हो तब मे अपनी बात रखू। वह खट–खट करके हाथ लगाकर या आहट करके निद्रा भग करने की भावना नहीं रखती है। आज के भाई–बहिनो मे इस प्रकार का विवेक है या नहीं ? आज की स्थिति बडी विचित्र है। कोई सोया है, उसका ध्यान न रखकर भाई–बहन धडा–धड चलेगे, जोर–जोर से बोलेगे, पर यह नहीं सोचते कि मैं इन्हे किस कारण और क्यों जगा रहा हूँ ? हा, कोई अति आवश्यक कार्य हो और उसके लिए जगाना पडे तो अलग बात है पर बिना विवेक के इस प्रकार का कार्य करना ठीक नहीं।

महारानी विवेक वाली थी, स्थिति समझने वाली थी। नय–निक्षेप का यत्किचित् उसे ज्ञान था। वह शान्ति के साथ वहा जाकर बैठ जाती हैं वह महाराजा के सिहासन पर बैठने की चेष्टा नहीं कर रही थी। महाराज स्वय भी इतनी गाढ निद्रा वाले नहीं थे। किसी–किसी व्यक्ति को नींद ऐसी आती है कि नगाडे भी पीटे तो नींद नहीं खुले। पर महाराजा मामूली सी आहट से जग गये। बोले–कौन ?

महारानी बोली–नाथ, यह आपकी धर्मप्रिया।

कहो–कैसे आना हुआ ?

नाथ ! कुछ विशिष्ट कार्य के लिए आई हूँ।

महाराज ने उसे बैठने के लिए आसन दिया। यह स्थिति गृहस्थाश्रम की है। उनके विचारो की व जीवन की स्थिति किस प्रकार की है, यह भी आप समझिये। वे एक आसन पर बैठना भी पसन्द नहीं करते थे। महाराज ने स्वस्थ होने के बाद पूछा–तबियत तो ठीक है ना ?

हा महाराज, तबियत तो ठीक है, मैं कुछ विचार रखने आई हूँ। महारानी ने कहा–मैंने शय्या मे सोते हुए एक श्वेतवर्ण हाथी को देखा और वह हाथी राजभवन मे प्रवेश करते हुए मेरे पास आकर बैठ गया। इतने मे मेरी नींद भग हो गई। इस स्वप्न का क्या अर्थ है ? यही समझने मैं यहा उपस्थित हुई हूँ।

महाराज भी 72 कलाओं के जानकार थे। उन्होनें कहा–जिन्दगी

मे ऐसा स्वप्न पहले तो नही आया ? महारानी ने कहा–नही महाराज, पहले ऐसा स्वप्न कभी नही आया। महाराजा कहते हैं–तुम्हारे घर मे कोई पुण्यवान् आत्मा आने वाली है। तुम्हारी कुक्षि से किसी पुण्यात्मा के जन्म का प्रसग है।

महाराजा कहने लगे–यह पुण्यवानी का उदय है। आने वाली आत्मा पुण्यशाली है क्योकि पुण्यवानी के बिना इस प्रकार के स्वप्न की स्थिति नही बनती। तुमने यह अपूर्व स्वप्न देखा है। अब तुम जीवन मे भक्ति भावना लाना। वापिस जाकर शयन की भावना मत रखना। मैं भी सूर्योदय तक का समय ज्ञान के साथ व्यतीत करना चाहता हू।

ठीक है मैं भी शयनकक्ष छोडती हू।

पिछली रात्रि मे दोनो धर्मस्थान पर पहुँचे और धर्मजागरण मे लग गये। समभाव का चिन्तन किया। फिर प्रात तन्दुरुस्ती के लिए घूमने बाहर जाया करते थे इसलिए राजभवन के बगीचे मे चले गये। महारानी और महाराज बगीचे मे पहुच जाते हैं।

घूमते समय महाराज बगीचे के वृक्षो, फूलो और प्रकृति के दृश्यो से शिक्षा देते है। कहते हैं–इन फूलो को देखो। यह कमल है,इसकी कितनी महक है ? यह मनुष्य के दिल को शान्त करता है। ऐसे ही तुम्हारे गर्भ मे कोई न कोई ऐसी आत्मा आने वाली है, जिससे मेरा मन प्रफुल्लित महाराजा घूम रहे थे। उनमे न तो भद्दी मजाक थी, न विकारी भावना का प्राबल्य था।

बन्धुओ ! आज इन बातो की शिक्षा लेना कितना आवश्यक है। आप हर समय ससार के विषयो की बातो को ही मस्तिष्क मे न रखकर जीवन–निर्माण की ओर प्रयास करेगे तो आप अपने मे सुन्दर सस्कारो का तो निर्माण करेगे ही साथ ही आपके सुन्दर सस्कारो की छाया अपने बच्चो मे भी देख पायेगे। पर आज आपका ध्यान इस ओर कहा है ? मैं किसको शिक्षा दू ? किसको सुनाऊ ? आपको कहूँ ? आप इन बातो पर ध्यान रखने को होगे तैयार ? आप तो चाहते हैं–महाराज सुनाते जाए। पर केवल सुन लेने से क्या होगा ?

महाराज और महारानी बगीचे मे घूम रहे हैं। शिक्षाप्रद बाते चल रही थीं कि अचानक एक हाथी श्वेत वर्ण का आ जाता हैं देखो

क्या कुदरत बनती है। ? उधर माली, नौकर–चाकर सभी हल्ला मचाते हैं, जगल का हाथी आ गया, बचो–बचो, महाराजा को भी आवाज देकर कहने लगे–हटिये स्वामिन् ! यह जगल का हाथी है। पर महाराजा और महारानी दोनो मन के बडे पक्के थे। मन से स्वस्थ थे। वे हाथी से भयभीत नहीं हुए। महारानी ने कहा–कुदरत को क्या इष्ट है ? यह वही हाथी तो नहीं है ? महाराज बोले–कह नहीं सकता पर श्वेत वर्ण का हाथी तो साक्षात है। वे वहा से भागे नहीं,उनके अन्दर निर्भयता की वृत्ति थी कि हम किसी को सताना नहीं चाहते तो कोई हमे भी क्यो सतायेगा। हाथी महाराज और महारानी के पास पहुच गया। उसने महाराजा को सूड मे उठाकर ऊपर चढाया और फिर महारानी को भी उठाया। लोग कहने लगे–अरे अनर्थ हो जाएगा। यह महाराज को पटक देगा। पर वह हाथी मारने वाला नहीं था। उसने महाराजा और महारानी को सूड से उठाकर अपनी पीठ पर बैठाया और वहा से रवाना हो गया। नगर की जनता इस दृश्य को देखने के लिए उमड पडती है। हाथी चुपचाप नगर के बाजारों में से होता हुआ सीधा राजभवन पहुचा। सूड से महाराजा और महारानी को उतारा और सूड से प्रणाम किया। बाद में जिधर से आया उधर ही रवाना हो गया।

इस दृश्य को देखकर अलग–2 व्यक्ति अलग–2 प्रकार की कल्पनाए करने लगे। महाराजा व महारानी के मन मे प्रात काल का दृश्य आ रहा था कि आने वाले महापुरुष की कैसे रक्षा करना, कैसे सस्कार देना, किस अवस्था मे रखना ? उनमे इस प्रकार का विज्ञान शास्त्रीय दृष्टि से भी था। साथ ही साथ महारानी को नय आदि का भी यत्किचित् ज्ञान था और वह प्रारम्भिक ससकारो को भी नय आदि की दृष्टि से सोचा करती थी।

महारानी एकान्त मे बैठकर सोचने लगी कि शास्त्र मे नैगम नय का स्वरूप बतलाया है। जिसके जीवन मे अपेक्षा दृष्टि से सोचने की क्षमता आती है वह उन्नति करता है। उसके विचार उदार सम्पूर्ण और समीचीन होते हैं। महारानी सोचने लगी–श्वेत वर्ण धर्म का प्रतीक होता है इसलिए धर्म की दृष्टि से मुझे गर्भ की रक्षा करनी चाहिये। महारानी ने बैठकर प्रण किया कि मैं अब अपने जीवन को

इस प्रकार रखू कि मेरी भावना हर समय शुद्ध बनी रहे। वह सोचने लगी–मै ईर्ष्या द्वेष का त्याग करू। जब तक गर्भ की स्थिति है मै किसी के साथ ईर्ष्या नही करूगी। ईर्ष्या जानते हैं ? डाह, जलन। यह क्यो बढ गया ? मैं पीछे क्यो रह गया ? पडौसी क्यो बढ गया ? यह क्यो सुखी है ? इस प्रकार की भावना मन मे लेकर जो चलता है और उससे जलता रहता है वह ईर्ष्या से ग्रस्त है। महारानी सोच रही थी कि अगर ईर्ष्या की भावना को मैने मन मे स्थान दिया तो मेरा जीवन तो खराब होगा ही पर गर्भ के ऊपर भी वैसे ही सस्कार पडे बिना नही रहेगे। फिर वह सन्तान भी ईर्ष्या द्वेष करने वाली होगी। जिनके मा–बाप द्वेष करने वाले होते है उनकी सन्तान भी प्राय वैसे ही होती है। कोई भाग्यशाली सन्तान ही उन परम्परा प्राप्त सस्कारो से बच पाती है।

आप जानते है सर्पिणी बच्चे देती है तो वह गोल घेरे मे बैठकर देती है। वह उन बच्चो को खाने की चेष्टा करती है। उस घेरे से बाहर एकाध कोई बच्चा रह जाता है तो वह बच जाता है। उसी तरह से जो जहरीले मा बाप होते है उनकी सन्तान भी प्राय भयकर होती है। पर अपवाद स्वरूप कुछ सन्ताने मा बापो के विचारो के घेरे से बाहर पड कर अमृतमय जीवन का सृजन करती है। आज आप छोटे–छोटे बच्चो मे क्या पाते है ? छोटा सा छोकरा गुस्सा देखो तो कैसा ? मॉ बाप स्वय अपने जीवन का ख्याल नही करते। इसलिए ऐसी दशा बनती है। आप ईर्ष्या द्वेष को दूर फेकने की चेष्टा करे।

महारानी सोच रही है–आज मुझे ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना है। आज के लोग भी ऐसी मर्यादा करते होगे ? आप अपने घर की बात सोचे। आज के मानव का बर्ताव किस ढग का है ? कभी–कभी मेरे भाई अलोयणा के प्रसग से स्थिति सामने रखते है जिससे पता चलता है कि मनुष्य की स्थिति पशु से भी बद्तर है। सुना जाता है कि मादा पशु गर्भ की अवस्था मे है तो पुरुष पशु उसकी तरफ देखता नहीं। यह मर्यादा कई पशुओ मे भी पाई जाती है। क्या पुरुष पशु से भी गया गुजरा है ? मनुष्य के इस प्रकार अमर्यादित रहने से भी कभी–कभी अधूरे गर्भ गिर जाते हैं। सन्तान अन्धी, लूली, रोगग्रस्त

बन जाती है। फिर कहते हैं कि इसे अमुक बीमारी हो गई, पर इसका कारण कौन बना ? बाद मे डाक्टरो के पीछे फिरने की अपेक्षा तो स्वय पहले मर्यादित रहना क्यो नहीं सीख लेते। दअसल उन बच्चो के दुश्मन मॉ बाप ही बनते हैं। क्या उन्हे पशु की उपमा दी जाय ? एक दृष्टि से ऐसे व्यक्तियो को मर्यादित रहने वाले पशुओ की उपमा नही दी जा सकती। लेकिन जो मानव गर्भावस्था की स्थिति मे अमर्यादित रहते हैं उनको किसकी उपमा दी जाय ? मैं अपने मुह से कोई उपमा नहीं देना चाहता। आपको यह कठोर लगेगा। आपको क्यो, कठोर तो उनके लिए है जो इस प्रकार अमर्यादित जीवन व्यतीत करते हैं। यदि आपके जीवन मे वैसी मर्यादा नहीं है, तो आपको वह मर्यादा लानी चाहिये।

आप जीवन मे निर्मल सस्कार लेकर चलेगे तो आपका जीवन निर्मल रहेगा। महारानी ने प्रण कर लिया कि जब तक गर्भ अवस्था है मैं अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूगी। वैसे तो उसका निर्मल जीवन पहले से भी था। फिर भी विशिष्ट प्रतिज्ञा के साथ चलने की स्थिति मे वह आगे बढ रही है।

यह वर्णन लम्बा है। एक साथ बोल जाऊँगा तो आपकी समझ मे पूरा नहीं आयेगा। इस दृष्टि से इसे यही तक रखकर आपको सकेत देता हूँ कि आप भी जीवन निर्माण मे इस प्रकार की प्रतिज्ञाओ को लेकर आगे बढे।

वे महात्मा जगल मे नल राजकुमार को समझा रहे हैं। आगे प्रश्नो की क्या शुरूआत होती है गर्भ के ससकार जीवन मे किस प्रकार पल्लवित होते हैं ? यह भावी के गर्भ मे रहा हुआ है।

आप सातो नयो को सामने रखकर अपेक्षा दृष्टि से समन्वय करके वीतराग प्रभु के मार्ग के अनुसार जीवन बनाने का प्रयास करेगे तो प्रभु के दर्शन कर पायेगे।

इसी शुभ भावना के साथ।

❀❀❀❀❀

ज्ञानशक्ति का विकास

अभिनन्दन जिनदर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये, सहु थापे अहमेव।। 1।।
घाती डूगर आडा अति घणा, तुज दरिशन जगनाथ,
ढिठाई करी मारग सचरू, सेगु कोई न साथ।। 2।।

ये अभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना की कडिया हैं। यह अभिनन्दन भगवान् के नाम पर बनाई गइ स्तुति है। इस स्तुति की कडियो को मैं थोडी–थोडी सा उच्चारण कर रहा हूॅ जिनका अर्थ करना है। उनका यत्किचित् अर्थ करना और फिर शास्त्रीय विषय का प्रतिपादन करना अभीष्ट है। जो आप्तोपदिष्ट शास्त्रीय दृष्टिकोण है वहीं वीतराग प्रभु का दृष्टिकोण है। और यदि वीतराग दशा की ओर ध्यान गया तो हम अपने जीवन के अन्दर अभिनन्दन भगवान् के दर्शन ठीक तरह से कर पायेगे। पर उन दर्शनो के पीछे कई बडी कठिनाइया है। कई उलझने आकर खडी हो जाती है, इस प्रकार की आपत्तिया हैं। कई उलझने आकर खडी हो जाती है, इस प्रकार की आपत्तिया रास्ता रोक लेती हैं तब आगे बढने पर भी दर्शन मे रूकावट आ जाती है। कवि ने सकेत दिया –

घाती डूगर आडा अति घणा,
तुज दरिशण जगन्नाथ।
ढिठाई करी मारग सचरु,
सेगु कोई न साथ।

डूगर आपकी भाषा मे पहाड है। वह लम्बी–लम्बी चोटियो वाला पहाड, विकराल भीमकाय चट्टाने, अनेक तरह की कटीली झाडियों वाले पहाड । क्या वे भगवान् के दर्शन मे बाधक हो रहे हैं ? तो क्या भगवान् उन पहाडो के पीछे हैं ? यह बाहरी दिखने वाले पहाडो का जिक्र नहीं है, बाहरी पहाड पार किये जा सकते हैं, घाटिया लाघी जा सकती हैं। पर वहा कोई दर्शन मिले तब ना । वहा दर्शन नहीं । दर्शन तो इस जीवन मे है। पहाड के मानिद वे जबरदस्त घाटिया इस जीवन मे रही हुई हैं। उन घाटियो को मानव समझ नहीं पाता इसलिए वह लडखडा जाता है। और प्रभु के दर्शन की प्यास शान्त नही हो पाती।

प्रभु का नाम स्मरण या स्तुति की कडिया कर्णगोचर होती हैं। कर्ण के माध्यम से वे फिर अन्दर पहुँचती हैं। अन्दर मे जिस स्थान पर वाक्यो के अर्थ का अनुसधान होता है उस स्थल पर शब्द का अर्थ पहुँचने का जब प्रसग आता है तो चेतना उस अर्थ की ओर ध्यान देकर आत्मा के साथ सबन्धित करने का प्रयास करती है। वहीं स्थल आन्तरिक शक्ति के निवास का भी है। शब्द रूप पदार्थ कान पर जाकर टकराता है और लौट जाता है। लेकिन कान के पर्दे पर पडी हुई आवाज अन्दर तक पहुँचती है। अन्दर मे वह चेतना उस शब्द के अर्थ को बिखेर देती है और देखती है कि शब्द की आकृति मे (उच्चारण में) क्या प्रभु के दर्शन हैं ? दरअसल शब्द की आकृति मे प्रभु के दर्शन नहीं हैं। शब्द के पीछे रहने वाले अर्थ मे यदि अन्तर की चेतना जुड जाती है तो वह सभवत प्रभु के दर्शन कर सकती है।

लेकिन कभी–कभी मेरे भाई सोच लिया करते हैं कि महाराज कहते हैं–अन्दर मे प्रभु के दर्शन करो। इससे यह समझ मे आता है कि एक तो हमारी आत्मा अन्दर बैठी है और दूसरे वह सिद्ध स्वरूप भगवान् भी अन्दर किसी कोने मे आकर बैठा है तो इस शरीर मे दो तत्व रह रहे हैं। ऐसे कई भ्रम मे पड जाते हैं। पर आपको ख्याल रखना है कि इस शरीर मे चेतना एक ही है। प्रत्येक शरीरी आत्मा एक शरीर मे एक ही रहती हैं। शरीर नियन्ता रूप मे एक ही आत्मा होती हे। उसमे दो आत्मा एक साथ नहीं रहते। एक शरीर में एक

आत्मा ही है। सिद्ध स्वरूप का आकार अन्दर बैठा हुआ नहीं है। पर जो आत्मा इस शरीर के प्रत्येक अवयव मे व्याप्त है वही आत्मा स्वय ईश्वर स्वरूप है। पूर्ण ईश्वरत्व की शक्ति इस शरीर के अन्दर रहने वाले आत्मा मे विद्यमान है, लेकिन वह शक्ति छिपी हुई है। जैसे कि स्वर्ण खदान मे मिट्टी के साथ घुल मिल कर रह रहा है और मिट्टी मे घुला हुआ स्वर्ण जन साधारण की दृष्टि मे नही आता। ऊपरी दृष्टि से तो मिट्टी का ढेला ही दिखता है। बहिर्दृष्टि कहेगा–स्वर्ण कहा है ? पर यदि किसी समझदार व्यक्ति को या स्वर्णकार को कहा जावे कि भाई इसमे क्या दिखता है ? वह कहेगा। इसी मिट्टी मे स्वर्ण रहा हुआ है, इस मिट्टी मे तुम्हे स्वर्ण मिलेगा। वह स्वर्णकार उस मिट्टी मे स्वर्ण देखने के लिये कहता है। वह मिट्टी और स्वर्ण को अलग–अलग करने की कोशिश करता है। उसी से निखालिश स्वर्ण सामने आ जाता है।

जैसे स्वर्ण मिट्टी मे रहा हुआ, वैसे ही सत् चित् आनन्द घन–रूप ईश्वर की समग्र शक्ति इस शरीर के अवयवो मे छिपी हुई है। वह है चेतन्य। उसे देखने के लिये सम्बोधन किया जाता है कि तू अपने अन्दर मे रहने वाले भगवान् को जल्दी देख नही पायेगा, अत सिद्ध अवस्था मे रहे हुए भगवान् के आदर्श स्वरूप को अपनी ज्ञानशक्ति मे ग्रहण कर और उस आदर्श स्वरूप भगवान् के तुल्य भगवान् को इसी शरीर मे खोजने के चेष्ठा कर। क्योकि वह ईश्वर तेरे इस शरीर के अवयवो से भी आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यधिक नजदीक है। तुझे बाहर जाने की आश्यकता नही है। घर मे ही तुझे वह विज्ञान मिल जायगा। पर मिलेगा कब ? जिस आदर्श रूप मे प्रभु का उच्चारण किया गया है उस उच्चारित शब्द को छोडकर शब्द मे रहने वाले रस रूप अर्थ को लिया जायगा तब।

एक व्यक्ति गन्ने के रस को चखना चाहता है। उस व्यक्ति से पूछिये कि तू यदि मीठा रस अपने पेट मे डालना चाहता है तो गन्ने के टुकडे क्यो चूसता है ? गन्ने के टुकडो को लेकर के चूसता है या कुछ अन्य वस्तु ? गन्ना जानते हैं आप ? इस वक्त सामायिक के अन्दर उसे नही चूसना है। यहा मैं किसी दूसरे गन्ने का रस चबाना

चाहता हू। यह तो रूपक हैं वह भाई गन्ने के टुकडे को चूसता है पर रस चूसने के बाद निस्सार भाग को छोड देता है और रस को शरीर मे परिणत कर लेता है।

वैसे ही ये कविता के टुकडे, ये शब्द के गट्टे, आप चबा मत जाइये, इनको चूसिये। चूसने का मतलब है—इसमे से वास्तविक आत्मा के स्वरूप की प्रेरणा कैसे मिलती है, इस कला के साथ अर्थ को लेने की चेष्टा करिये। यदि रस आ जाये, तो शब्द को व कविता की कडियो को एक तरफ छोड दीजिये। और उसी अर्थ के साथ अन्दर की चेतना का सम्बन्ध जोड दीजिये। चेतना से सम्बन्ध जुड जायगा तो वह अर्थ चैतन्य शक्ति को प्रकट करने के लिए अन्दर जडो के रूप मे पलेगा और चैतन्य शक्ति अपने आप मे निखालिश रूप से प्रकट कर सकेगा।

आपको मालूम है—आम का बहुत बडा झाड किससे रस पाता है ? आम का झाड बडा होता है तो किसके आधार पर ? आम की गुठली के आधार पर। गुठली के अन्दर कुछ सत्व है, उगने की शक्ति है। पर उगेगी कब ? जब कि उसको जमीन के अन्दर डाला जायगा। धरती के अन्दर मे से वह उगेगी। पर कभी आपने यह भी ख्याल किया कि जब पौधा बाहर आता है तो क्या गुठली बाहर आती है ? या उसका विकृत रूप बाहर आता है ? गुठली स्वय विलीन हो जाती है, अपने अस्तित्व को खो देती है। पर वह दो छोर से विकसित होती है। एक ऊपर के पौधे के रूप मे और एक भाग जडो के रूप मे। जडे फैलती हैं उस वक्त गुठली का रूपक का नही देखेगे। उसने अपना अस्तित्व गमाया और अन्दर जडो के रूप मे वह बाहर पौधे के रूप मे दूसरा अस्तित्व प्राप्त किया है। वे जडे मिट्टी मे है और मिट्टी से आम्र वृक्ष के बनने योग्य जितना रस हे उस रस को जडे अपने माध्यम से खीचेगी। वहा पर रासायनिक प्रक्रिया बनती रहेगी।

आज का मानव प्रयोगशाला की रासायनिक प्रक्रिया को देखकर विचार मे पड जाता है, कि विज्ञान की प्रयोगशाला मे केसे विचित्र पक्रिया हो जाती हे। देखो ना, जो स्वर्ण पत्थर के समान

दिखता था उससे स्वर्ण–भस्म बना दी गई, स्वर्ण के वर्क बना दिये गये। अमुक रासायनिक प्रक्रिया से इन्जेक्शन बन गया। इन रासायनिक प्रक्रियाओ को देख–देख कर मानव के मन मे नया आश्चर्य पैदा होता है।

पर मै सोचता हूँ–मानव की दृष्टि प्राकृतिक तत्वो की ओर प्राय कम जाती है। अगर आप वृक्ष की तरफ ध्यान देगे तो उसमे कितनी जबरदस्त रासायनिक प्रक्रिया का दृश्य मिलेगा। बारीक दिखाई देने वाली जडे जमीन मे से, मिट्टी मे से, कैसे रस खीच लेती हैं ? मिट्टी का एक ढेला रख दीजिये क्या आप उसमे से आम का रस निकाल सकेगे ? क्या आप मे ऐसी ताकत है ? नहीं। क्या वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा आम का रस मिट्टी मे से निकाला जा सकता है ? नही पर आम का रस बनाने की कला उन जडो मे रही हुई है। जडे अन्दर जाती है तो कहा कहा पहुचती है ? कोई चट्टान भी आडी आती है या नही ? पत्थर और कटक रास्ते मे बाधक बनते है या नहीं ? जडे चट्टान की परवाह नही करती, कटीले स्थल की परवाह नही करती। कदाचित् उसी जमीन मे अफीम की डली भी पडी हो। वह भी चारो तरफ अपना प्रभाव दिखा रही हो तो भी क्या वे जडे उसके जहर से प्रभावित होती हैं ? नही। वे जडे कही नही रुकती और अपने कार्य की तरफ बढती हुई मधुर रस से परिपूर्ण फल पैदा कर देती है।

आप चेतना की तरफ ध्यान दीजिये। शुद्धस्वरूप भगवान् का नाम अन्दर मे जाकर एक प्रकार के रस के रूप मे फैल जाता है और हड्डी रूपी चट्टान या अन्दर जो अनेक तरह के कर्मो की चट्टाने हैं, जिनमे आत्मा का शुद्ध स्वरूप छिपा हुआ है, उनमे यदि वह सत्‌चित् आनन्द–घन रूप आत्मा का ज्ञान जड रूप मे पहुँच जाय तो घनघाती कर्म रूप डूगर भी उसमे वाधक नही वन सकते। आडे डूगर हे यानि घाती कर्म हे। घाती कर्म जानते हैं ? ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय ये चार घाती कर्म हैं। ज्ञानावरणीय घाती कर्म है। आत्मा का प्रमुख स्वभाव ज्ञान हे और इस ज्ञान शक्ति को आच्छादित करने वाला ज्ञानावरणीय कर्म पहाड के रूप मे आडा आता ह। उसके शास्त्र मे सक्षेप मे पाच भेद किये ह–

नाणावरण पचविह, सुय आभिणिवोहिय।
ओहिनाण च तइय, मणनाणा च केवल।।

उसूअ 33 गा 4

यह शास्त्र का उद्घोष है। वह ज्ञानावरणीय कर्म पाच विभागो मे विभक्त है। पाच विभागो के रूप मे आत्मा के ज्ञानगुण को आच्छादित कर रहा है। लेकिन आत्मा की शक्ति उन पाच प्रकार के ज्ञानावरणीय कर्मो की तरतमता से विकास के रूप मे आती है तो उस शक्ति के भी पाच विभाग बन जाते हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान मन पर्यायज्ञान और केवल ज्ञान। इन को आच्छादित करने वाले कर्मो की सज्ञा गिनाई गई है। वह इस प्रकार है—आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्म, श्रुतज्ञानावरणीय कर्म, अवधिज्ञानावरणीय कर्म, मनपर्यवज्ञानावरणीयकर्म, और केवलज्ञानवरणीय कर्म। आत्मा की अखण्ड ज्योति पर पाच तरह के ढक्कन लगे हैं। उन पाच तरह के ढक्कनो को हटाना सहज नहीं समझो। बाहर की चट्टान तो सहज तोडी जा सकती है, वक्त पर इन्हे तोडने के लिए सुरग लगाने की आवश्यकता रहती है। जो बाहर की चट्टाने हैं उनका यह हाल है। लेकिन जीवन के अन्दर की चट्टानो को उन बाह्य साधनो से तोडना शक्य नहीं। उस कर्म रूप अन्दर की चट्टान को तोडने के लिए विवेक शक्ति को जागृत करने की आवश्यकता है। उसी विवेक शक्ति के साथ सिद्ध शब्द की अर्थरूप शक्ति को जीवन के अन्दर ज्ञानरूपी जडो की तरह फैलाई जाय तो वह कर्म रूपी चट्टानो के नीचे पहुचकर शुद्ध स्वरूप के रस को खींचती हुई एक रोज पूर्ण विकास का अकुर उत्पन्न कर देती है और वह अकुर केवल ज्ञान रूपी वृक्ष के रूप मे पल्लवित हो सकता है।

एक विद्यार्थी बिल्कुल अबोध है। वह पढने के उद्देश्य से शाला मे पहुँचा। उसे अक्षर का ज्ञान बिल्कुल नही है। अध्यापक ने ब्लेक बोर्ड पर अक्षर लिखा स्लेट पर लिखा और बच्चे से कहा—देख 'क' ऐसा होता है। क्या बच्चा उस बोर्ड पर लिखे अक्षर को पी लेता है या उस अक्षर अथवा वर्णमाला को चाट जाता है ? क्या करता है ? वह न घोटकर पीता है, न चाटता है। वह देखकर उसे वही

देता है और अन्दर मे चिन्तन करता है कि 'क' ऐसा होता है। 'ब' की आकृति ऐसी होती है। ऐसा चिन्तन करते–करते वह स्वत अन्तर मे उस वर्णो को व्यक्त कर लेता है। लेकिन उन अक्षरो को ही सब कुछ समझकर नमस्कार आदि नही करता। बाहर के ब्लेक बोर्ड के 'क' को छोड देता है। फिर उस बच्चे से कहा जावे कि यहा स्लेट नही है, इस पन्ने पर लिखना है तो वह उस पन्ने पर लिख देगा। अध्यापक ने घोटकर पिलाया नही, उसने चाटा नही पर उसको अन्दर से विकसित किया। वह अक्षर स्थायी हो गया। चाहे अक्षर हिन्दी का हो, इग्लिश का हो, उर्दू या पारसी की वर्णमाला का हो, वह अन्दर मे अलग–अलग भाषाओ के सस्कार बैठाता है और अक्षरीय ज्ञान की उपलब्धि होती है। पर फिर भी वह एक दृष्टि से वास्तविक ज्ञान नही है।

आप थोडा एकाग्रचित्त से विचार कीजिये। आप सोचेगे कि फिर ज्ञान किसको कहेगे ? यदि वह वास्तविक ज्ञान नही है तो कौनसा है ? वास्तविक ज्ञान उसके माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। वहा ज्ञान का निमित्त मिलेगा। अक्षर वर्णमाला आदि ज्ञान के निर्मित्त हैं। वास्तविक ज्ञान आत्मा मे हैं।

यह थम्भा है। ज्ञान करने के लिये 'थम्भा' शब्द का अर्थ सोचा जाय तो उससे मस्तिष्क मे थम्भा व्यक्त होगा। दृष्टा मकान को देखता है तो मकान को अन्दर मे व्यक्त कर लेता है। मूल मे तो ज्ञान शक्ति उसके पास है। पर दुनियॉ के जितने पदार्थ है उनके साथ रहने से या उन्ही को सब कुछ मानने से आत्मा वास्तविक ज्ञान की तरफ नही पहुँच सकता। अपने स्वरूप से विमुख रहता है।

अखबार पढते–पढते ससार का ज्ञान बाह्य दृष्टि से कर लेगा पर ईश्वर कहा है, इसका ज्ञान कैसे कर पायेगा ? आत्मिक ज्ञान से वह शून्य रहेगा। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के साथ मोहनीय कर्म का भी क्षयोपशम जब होता है तब इस प्रकार का ज्ञान पैदा होता है। पर केवल ज्ञान को ढकने वाली कर्म रूप चट्टाने इतने ज्ञान मात्र से आगे पीछे नही होती।

कई विद्यार्थी बहुत मेहनत करते है फिर भी उन्हे ज्ञान प्राप्त

नहीं होता। वे हैरान हो जाते हैं। एक को ज्ञान नहीं हुआ और दूसरे विद्यार्थी को क्यो हो गया ? विद्यार्थी की बात छोडिये। एक महात्मा साधना करने की दृष्टि से बैठे। गुरुदेव ने एक शास्त्रीय गाथा का पाठ दिया। वे मुनि उच्चारण करते हैं। बार–बार देखते है। जोर–जोर से रटते हैं। और अपना अधिकाश समय उसी गाथा को याद करने मे लगाते हैं पर उनको गाथा याद नही होती। साथी सत हसते हैं–इनको एक श्लोक, एक गाथा याद नहीं हुई। इस प्रकार दूसरे साथी सतो से हीनता के वचन सुनकर वह खेद का अनुभव करता है। दूसरा कहता है–भाई, सोचते नहीं हो इनके ज्ञानावरणीय कर्म की बहुत बडी चट्टान आडी आई हुई है। ज्ञानावरणीय कर्म के उदय के कारण गाथा याद नही हो रही हैं पर इनमे साहस कितना है। पूरी शक्ति इस पर लगा रहे हैं। व्यर्थ किसी से बात नही करते। कितना इनका पुरुषार्थ है। इस प्रकार के वचनो से उसको थोडी प्रसन्नता होती है। कभी दुख कभी प्रफुल्लता आती है पर अन्दर की चट्टाने टूटी नहीं। आप चट्टानो का मतलब पत्थर की चट्टानो से नही समझ ले, यहा ज्ञानावरणीय कर्म की चट्टाने हैं। मुनि ने सोचा–क्या करे ?

उस मुनिराज ने गुरुदेव से जाकर कहा–गुरुदेव, अनेक साथी सत मेरी निन्दा करते हैं तो दुख होता है, कोई प्रशसा करते हें तो प्रफुल्लता होती है पर गाथा याद नही होती।

गुरुदेव ने सोचा–यह विनीत हे, पुरूषार्थी है। लगन वाला है पर पूर्व जन्म के कर्मो के कारण इसकी ज्ञानशक्ति पर आवरण हे जिससे इसे याद नहीं होता। गुरु महाराज ने कहा–घबराओ मत। इस गाथा को याद करने के साथ साथ एक विधि और अपना लो। शिष्य ने कहा–फरमाइये क्या विधि है ?

गुरु ने बताया–"मा रूस मा तुस' ।

गुरुदेव ! यह याद नही होता है। इसका अर्थ क्या हे।

गुरु ने कहा–इसका अर्थ है कि जब तुम याद करते हो ओर तुम्हारे साथी तुम्हारी हसी उडाते है उस समय मन मे ग्लानि भावना मत लाओ। यह 'मा रूस' का अर्थ हे। मा तुस का मतलब ह कि तुम्हारी कोई तारीफ करे तो उसमे प्रफुल्लित मत होना। यदि

लेकर आ रहा है तो मैं उसके प्रति न्याय करू और सात्विक भोजन करू। मैं सादा सात्विक भोजन करूगी तो उसका रस बच्चे के जीवन–निर्माण मे विशेष सहायक होगा। बालक का जीवन भी सात्विक वनेगा।

यह विज्ञान उस माता मे था इसलिये उसने मन को वश मे किया। शास्त्र के अन्दर भी वर्णन है कि गर्भ की अनुकम्पा के लिये माताओ ने मनोज्ञ आहार का भी त्याग किया अर्थात् महारानी पुष्पदन्ती ने शास्त्र की पद्धति को खयाल मे रखकर गर्भ के हित–सरक्षण के लिये खाने की स्थिति का ध्यान रखा। अधिक मीठा, भारी या अधिक विकारयुक्त मनोज्ञ पदार्थ का भी त्याग कर दिया। इसके साथ ही साथ सोचा–मैं इस समय गर्भवती हूँ। शृगार सम्बन्धी वस्त्र शरीर पर धारण करूगी तो उसका भी असर सन्तान पर हुए बिना रहेगा नहीं।

आप सोचेगे–वस्त्र तो शरीर पर धारण किये जाते हैं। भोजन की वात तो फिर भी समझ मे आती है पर फैशनेबल वस्त्र का क्यो त्याग किया ? आपको इसके लिए बारीकी से अध्ययन करना होगा। जो वस्त्र धारण करता है वह कोई बिना इरादे के धारण नही करता। फेशनेवल वस्त्र प्राय विकारी भावना के कारण धारण किये जाते है। वह सुन्दरता का प्रदर्शन करने के लिए भी ऐसे वस्त्रो का प्रयोग कर सकता है। यह अन्दर की शक्ति को ढकने वाला है। ऐसे वस्त्रो से समझना चाहिये कि अन्तर मे मोह की भावना चल रही है। ऐसा व्यक्ति रग–बिरगी पोषाको को सजाता है, अकडकर चलता है, पर सादी पोशाक वाला प्राय सादी रीति से रहता है। जरा फैशनेवल वस्त्र धारण कर लिये तो फिर उसके विचार अधिकाश मे उसी भावना मे घुलते रहते है। वह न ज्ञान सम्पादन कर पाता हे और न उसमे सात्त्विकता रह पाती है। ऐसे वस्त्र अन्दर की तामसिक वृत्ति को वढाने वाले बन सकते हैं। इसलिये महारानी ने सोचा–मुझे विकारी भावना वढाने वाले वस्त्र नही पहनने है। मैं सोलह शृगार सजा अच्छे वस्त्र पहनू तो भावना का असर पेट मे वनने वाले रस के साथ रहेगा और उसका प्रभाव गर्भ के वच्चे पर होगा। वह रस–हरणी नाडी के माध्यम से गर्भ मे पहुँचता हे।

उसने सादी पोषाक धारण कर ली। क्या पता ये बाते आपको जॅचेगी या नही ? इन माताओ को आज प्राय अपने जीवन का भान नहीं है। मेरी माताओ ! महारानी की बातो पर थोडा आप भी ध्यान दीजिये। और तो दूर रहा पर कम से कम धर्मस्थान पर तो फैशनेबल कपडे पहनने की भावना नही रक्खे। यह विज्ञान माताओ के पास किस तरह आयेगा यह आयेगा, वह आप सोचे ?, बहने सोचे मैं तो सिर्फ सकेत दे रहा हू।

उस महारानी ने फैशनेबल कपडो का त्याग किया। आज की बहने कम से कम इतना तो करे कि हम अधिक हिसाकारी वस्त्रो का त्याग करेगी। रेशम के वस्त्रो का और जिनमे गायो की चर्बी लगती हो उन वस्त्रो का त्याग करना चाहिये। मेरा काम तो सिर्फ सकेत देना है। त्याग करना या नही करना इस पर आप स्वय विचार कीजिये।

तो मैं कह रहा था कि महारानी ने सोचा–जब मै फैशनबल वस्त्र भी छोडती हूँ तो जेवर पहन कर किसको बताऊ ? कभी–कभी जेवरो के पीछे भी मन मे तूफान सा खडा हो जाता है। अच्छे अच्छे जेवर मन को इतने लुभाने वाले होते हे कि मनुष्य का दिल वहा से हटता नहीं। वृद्धावस्था आ जाय, गर्दन हिलने लगे, मुह से लार टपकती हो घर से निकले तो पैर कम्पन करे हाथ मे डडा लेकर चले फिर भी सोना मिल जाय तो अपने शरीर पर लाद लेने की हवस

अन्तर्मुहूर्त तक रह सकती है। उसके बाद परिवर्तन आये बिना नहीं रहता। उसने सोचा–शुभभावना के लिये भी मुझे प्रोग्राम बना लेना चाहिये। उसने दान, शील तप और भाव ये चार बाते सामने रखीं। पहले दान की शुभ भावना करना। ससार मे आकर मेने बहुत कुछ बटोरा है, दुनिया की सम्पत्ति सग्रह की है तो अब मुझे इसके सदुपयोग का भी ध्यान रखना है। मैं हर क्षण दान देने की भावना रखू। सुपात्र दान का प्रसग आये और कल्पतरु के तुल्य मुनिराज का सयोग मिले तो उनको दान देना मानो सारे विश्व के प्राणियो की कल्याणमय सुख शान्ति का अनुमोदन करना है। एक व्यक्ति सारे ससार के प्रति करुणा भावना लेकर चलता है और किसी भी प्राणी को हनन करना कराना व अनुमोदन भी करना नहीं चाहता तो उनकी सेवा करने वाला महान् फल की प्राप्ति करता है। क्योंकि ऐसे महापुरुष जो पाच महाव्रतो का पालन करते है, पाच समिति तीन गुप्ति से युक्त है, कनक कान्ता के त्यागी हैं रुपये–पैसे सोना–चाँदी टिकट–लिफाफे आदि किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखने वाले है आत्मा के चिन्तन मे निस्वार्थ भाव मे रत रहते है उन्हें किसी प्रकार

रखेगा कि जो हट्टा–कट्टा बाल–बच्चो को लेकर चल रहा है, ससार के सब विषयो का सेवन करता है, आमदनी का जरिया पूरा है किन्तु मागने का काम करता है तो उसे देना उसके पुरुषार्थ को नाश करने वाला बनता है।

अमरीका के दो सेठ दुखी के दु ख को मिटाने वाले, दु ख का दमन करने वाले थे। एक दिन उनको एक व्यक्ति अनुकम्पा का पात्र नजर मे आया जिसके पैर नही थे। एक सेठ ने हजार डालर अपनी जेब से निकाल कर दे दिये। दातार सेठ ने दूसरे सेठ पर दृष्टि डाली कि यह भी देता है या नही। पर दूसरे सेठ ने जेब मे से डालर निकालकर हाथ मे नही दिया। वह एक तागा किराये करके स्वय उसके साथ जाने के लिये उद्यत हुआ। उसने उसे उठाया और तागे मे बैठाया, स्वय भी बैठा। तागे वाले से कहा–कारखाने मे चलो जहा पर पैर लगाये जाते है। वहा जाकर कारीगरो से कहा–जितनी चाहिये उतनी कीमत ले लो पर इसके बढिया पैर बना दो जैसे किसी धनवान के बनाते हो। कारीगरो ने बढिया पैर बना दिये। सेठ ने कारीगरो को पैसे दे दिये। अब उसे उठाने की आवश्यकता नही रही। वह स्वय लकडी हाथ मे लेकर चलने लगा। सेठ ने उसको मिल मालिक से कह कर नौकर दिला दी। उसने एक पैसा भी हाथ मे नही दिया। दोनो सेठ एक दिन फिर मिले। प्रसगोपात्त दान देने वाला सेठ कहने लगा–आप मेरी बराबरी के सेठ ठहरे। मैंने उसे हजार डालर दिये। आपने क्यों नहीं दिये ? दूसरा सेठ बोला–मैने हाथ मे तो नहीं दिया लेकिन प्रकारान्तर से उसे दिया हे हाथ मे देने से क्या होता ? मैं क्या अन्य भी कोई चार व्यक्ति आपकी तरह उसे दे देते तो भी वह भीखमगा का भीखमगा ही रहता। पर मेने उसे सदा के लिए स्वतत्र स्वावलम्बी बना दिया है।

तो दान देते समय इस बात का विवेक रखना चाहिये। अपने विवेक–दीपक को बुझाकर दान देने मे कभी–2 दान देने का सही रास्ता भुलाया जा सकता है।

दान के पश्चात शील की भावना महारानी के मन मे चल रही है। शील का अर्थ स्वभाव भी लिया जाता है और शील ब्रह्मचर्य को

भी कहा जाता है। इस प्रसग को भी आपके सामने रखने की इच्छा है, पर व्याख्यान का समय आ गया। आज आपको महारानी की बातो और भावनाओ को ध्यान मे लेने की आवश्यकता है। आगे जैसा प्रसग बनेगा, सोचा जायेगा। यह ज्ञानशक्ति विकसित करने के लिए, उस पर आये हुए आवरणो को हटाने के लिए साधना अपनानी होगी। भगवान की स्तुति तो माध्यम बनेगी। आप विधियुक्त जीवन–निर्माण की कला सीखने की चेष्टा करेगे तो आपमे भी वह नक्शा धीरे–धीरे आ जाएगा।

इसी शुभ भावना के साथ।

3

सम्यग्ज्ञान की आराधना

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये, सहु थापे अहमेव ।। 1।।
हेतु विवादे हो चित्त धरी जोईये, अति दुर्गम नयवाद,
आगमवादे हो गुरगम को नहीं, ए सवलो विषवाद ।। 2।।

ये अभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना की कडियॉ है। इन कडियो से भगवान् के दर्शन की भावना व्यक्त की जा रही है। वह दर्शन कहा और कैसे होता है ? भगवान् के दर्शन के लिए नेत्र खोलने की आवश्यकता है। वे नेत्र कौनसे ? ये बाहर के नेत्र नही, अन्दर के हैं। नेत्रो का तात्पर्य अन्दर की ज्ञानशक्ति से है। वह ज्ञानशक्ति प्राणिमात्र मे विद्यमान है। उस ज्ञानशक्ति को वह विकसित भी कर सकता है, दबा भी सकता है। सही ज्ञानशक्ति के बिना मनुष्य का जीवन एक प्रकार से अन्धा है। जिसमे सही ज्ञानशक्ति नही है वह इस लोक और परलोक के किसी तत्त्व को सही रूप मे जान नही पाता। उसके लिए सर्वत्र अधेरा है। ज्ञान वह प्रकाश है जो पदार्थ को प्रकाशित करता है। द्रव्य प्रकाश के पीछे मनुष्य की सब स्थितिया चलती है। दिन के समय सूरज का प्रकाश है और जब रात्रि मे सूर्य का प्रकाश नही रहता है तब मानव कृत्रिम प्रकाश भी रखता है जिससे वह पदार्थ को देख सके। वह प्रकाश किससे प्रकाशित हो रहा है ? अर्थात् किससे देखा जा रहा है ? क्या सूर्य से सूर्य देखा जा रहा है ? बिजली के बल्ब से बिजली का बल्ब देखा जा रहा है ? सूर्य से सूर्य को देखा

नहीं जा सकता। एक सूर्य को देखने के लिए दूसरा सूर्य सामने रखा जाय तो क्या उसे देख सकेगे ? आप सोचते होगे महाराज, ऐसे भी दखा जाता है। पर मैं सोचता हूँ ऐसे नहीं देखा जाता। सूर्य को देखने के लिए हजार–हजार सूर्य काल्पनिक दृष्टि से ले लीजिये तो उससे हजार–हजार सूर्य का प्रकाश तो भले ही बढ जायगा पर सूर्य को देखने का जो वास्तविक साधन है वह उपलब्ध नहीं होगा।

आप जानते हैं वह साधन क्या है ? वह साधन नेत्रो का है। मनुष्य के नेत्र नही है तो दस लाख सूर्य तो क्या अनन्त सूर्य भी देखने का साधन नहीं बन सकेगे। देखने की शक्ति सूर्य मे नही, अनन्त सूर्यो मे भी नही, लेकिन नेत्र मे है। पर आप थोडा आगे बढिये ये चमडो के नेत्र भी द्रव्य नेत्र हैं भाव नेत्र नहीं। भाव नेत्र यानि ज्ञानशक्ति इनमे नहीं है। ज्ञानशक्ति नहीं तो दो नेत्र ही नहीं, हजारो नेत्र क्यो न हो, उनसे वस्तु का स्वरूप नही देख पायेगे। ये बाहर के नेत्र प्राप्त हैं लेकिन ज्ञानशक्ति कही दूसरी ओर है तो फिर चाहे कितना ही जाज्वल्यमान पदार्थ है उसे देखा नही जा सकता है। देखने की शक्ति ज्ञान मे है। वह शक्ति आत्मा की है। इन्सान के अन्दर वह शक्ति मोजूद है। ज्ञानशक्ति का प्रकाश पूर्ण होता है तो वह सब कुछ देख पाता है और ज्ञानशक्ति के अभाव मे भोतिक तत्त्व का सर्वत्र प्रकाश है तो भी वह कुछ नहीं देख पाता।

ज्ञान की वास्तविक महत्ता मानव समझता नहीं और कभी–कभी उदास भी हो जाता है। पर वह उदास होने वाला व्यक्ति अपने नेत्रो को विकसित कर नही पाता। जीवन की सुख–सुविधा देखने के लिए भी ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य मे ज्ञान की मात्रा हो तो उस कार्य मे सफलता है।

आप मोक्षमार्ग की तरफ बढना चाहते हैं प्रभु के दर्शन करने के लिए तरस रहे है लेकिन आप ज्ञान प्राप्त नही करेगे तो वह सब कुछ होने पर भी होने जाने वाला कुछ नही है। वीतराग पभु ने शास्त्र मे सकेत दिया–पढम नाण तओ दया। पहले ज्ञान और पीछे दया। साधक के लिये ज्ञान की आवश्यकता सबसे पहले रखी गई है क्योकि –

3

सम्यग्ज्ञान की आराधना

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये, सहु थापे अहमेव ।। 1।।
हेतु विवादे हो चित्त धरी जोईये, अति दुर्गम नयवाद,
आगमवादे हो गुरगम को नहीं, ए सवलो विषवाद ।। 2।।

ये अभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना की कडियॉ हैं। इन कडियो से भगवान् के दर्शन की भावन। व्यक्त की जा रही है। वह दर्शन कहा और कैसे होता है ? भगवान् के दर्शन के लिए नेत्र खोलने की आवश्यकता है। वे नेत्र कौनसे ? ये बाहर के नेत्र नही, अन्दर के हैं। नेत्रो का तात्पर्य अन्दर की ज्ञानशक्ति से है। वह ज्ञानशक्ति प्राणिमात्र मे विद्यमान है। उस ज्ञानशक्ति को वह विकसित भी कर सकता है, दबा भी सकता है। सही ज्ञानशक्ति के बिना मनुष्य का जीवन एक प्रकार से अन्धा है। जिसमे सही ज्ञानशक्ति नही है वह इस लोक और परलोक के किसी तत्व को सही रूप मे जान नही पाता। उसके लिए सर्वत्र अधेरा है। ज्ञान वह प्रकाश है जो पदार्थ को प्रकाशित करता है। द्रव्य प्रकाश के पीछे मनुष्य की सब स्थितिया चलती हैं। दिन के समय सूरज का प्रकाश है और जब रात्रि मे सूर्य का प्रकाश नहीं रहता है तब मानव कृत्रिम प्रकाश भी रखता है जिससे वह पदार्थ को देख सके। वह प्रकाश किससे प्रकाशित हो रहा है ? अर्थात् किससे देखा जा रहा है ? क्या सूर्य से सूर्य देखा जा रहा है ? बिजली के बल्ब से बिजली का बल्ब देखा जा रहा है ? सूर्य से सूर्य को देखा

नहीं जा सकता। एक सूर्य को देखने के लिए दूसरा सूर्य सामने रखा जाय तो क्या उसे देख सकेगे ? आप सोचते होगे महाराज, ऐसे भी देखा जाता है। पर मैं सोचता हूँ ऐसे नहीं देखा जाता। सूर्य को देखने के लिए हजार–हजार सूर्य काल्पनिक दृष्टि से ले लीजिये तो उससे हजार–हजार सूर्य का प्रकाश तो भले ही बढ जायगा पर सूर्य को देखने का जो वास्तविक साधन है वह उपलब्ध नहीं होगा।

आप जानते हैं वह साधन क्या है ? वह साधन नेत्रो का है। मनुष्य के नेत्र नहीं है तो दस लाख सूर्य तो क्या अनन्त सूर्य भी देखने का साधन नहीं बन सकेगे। देखने की शक्ति सूर्य मे नहीं, अनन्त सूर्यो मे भी नहीं, लेकिन नेत्र मे है। पर आप थोडा आगे बढिये ये चमडो के नेत्र भी द्रव्य नेत्र हैं, भाव नेत्र नहीं। भाव नेत्र यानि ज्ञानशक्ति इनमे नहीं है। ज्ञानशक्ति नहीं तो दो नेत्र ही नही, हजारो नेत्र क्यो न हो, उनसे वस्तु का स्वरूप नहीं देख पायेगे। ये बाहर के नेत्र प्राप्त हैं लेकिन ज्ञानशक्ति कही दूसरी ओर है तो फिर चाहे कितना ही जाज्वल्यमान पदार्थ है उसे देखा नही जा सकता है। देखने की शक्ति ज्ञान मे है। वह शक्ति आत्मा की है। इन्सान के अन्दर वह शक्ति मौजूद है। ज्ञानशक्ति का प्रकाश पूर्ण होता है तो वह सब कुछ देख पाता है और ज्ञानशक्ति के अभाव मे भौतिक तत्त्व का सर्वत्र प्रकाश है तो भी वह कुछ नहीं देख पाता।

ज्ञान की वास्तविक महत्ता मानव समझता नहीं और कभी–कभी उदास भी हो जाता है। पर वह उदास होने वाला व्यक्ति अपने नेत्रो को विकसित कर नहीं पाता। जीवन की सुख–सुविधा देखने के लिए भी ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य मे ज्ञान की मात्रा हो तो उस कार्य मे सफलता है।

आप मोक्षमार्ग की तरफ बढना चाहते हैं, प्रभु के दर्शन करने के लिए तरस रहे हैं, लेकिन आप ज्ञान प्राप्त नही करेगे तो वह सब कुछ होने पर भी होने जाने वाला कुछ नहीं है। वीतराग प्रभु ने शास्त्र मे सकेत दिया–पढम नाण तओ दया। पहले ज्ञान और पीछे दया। साधक के लिये ज्ञान की आवश्यकता सबसे पहले रखी गई है क्योकि –

पढम नाण तओ दया, एव चिट्ठइ सव्वसजए।
अन्नाणी कि कही, किवा नाही सेयपावग।।

दः सूः अः 4 गाः 10

अज्ञानी व्यक्ति क्या कर सकता है ? क्या वह श्रेय और पाप को जान सकेगा ? नही। तो जिस अज्ञानी को अपना स्वय का ज्ञान नही, अपने समान अन्य व्यक्तियो का ज्ञान नही, जिसको श्रेयोमार्ग का पता नही, श्रेयोमार्ग का ख्याल नही, जीवाजीव का भान नही, वह क्या कर सकेगा ? कुछ भी नही कर पायेगा। वहा पर कुछ करने के लिए ज्ञान की ही मुख्यता है।

अब देखना यह है कि उस ज्ञान की शक्ति को कहा से प्राप्त किया जा सकता है ? वह ज्ञान की शक्ति आकाश से नही आयेगी, पाताल से भी नही निकलेगी। वह शक्ति किसी दूसरे से प्रस्फुटित नही होगी, वह शक्ति तो स्वय से ही जागृत होगी। फिर भी स्वल्प मात्रा मे रहने पर वह स्वय अपने आप मे तृप्त नही हो पायेगा। ज्ञानशक्ति को स्वय से व्यक्त करना है। दूसरो का सहारा लिया जा सकता है, पर वह भी अल्पकालिक, सदा के लिए नहीं। जो सदा के लिए सहारे के भरोसे रहता है वह कभी पूरी ज्ञानज्योति को प्राप्त नही कर पाता। तीर्थंकर और भगवान् के बाद उपदेश देने वाले मुनिवर्ग साधक के साथ कुछ हद तक चलते हैं न कि अन्त तक।

जब तक साधक स्वय अपने पैरो पर खडा न हो जाय तब तक दूसरे भी मदद करते रहते है। दूसरे मदद किस लिए करते हैं ? उसे पैरो पर खडा करने के लिए। बच्चा अभी पैरो पर खडा नही हो रहा है, लडखडाता है, उठने की चेष्टा करता है और गिर जाता है। उस समय बच्चे के सरक्षक उस बच्चे को गिरते देखकर मददगार बनते हैं। उसकी अगुली पकडकर चलाते है। किन्तु वे कब तक सहायता देते हैं ? जब तक कि बच्चा पैरो से सबल बनकर चलने नही लग जाता। बच्चा जब स्वय खडा होने लगता है फिर क्या आप हाथ पकडकर चलाते है ? नही।

एक विद्यार्थी शाला मे बैठा है। अध्यापक अध्ययन कराता है। प्रथम कक्षा मे ज्यादा जोर लगाना पडता है। फिर आगे जैसे जैसे

कक्षाए बढती हैं अध्यापक का सहारा कम होता है। विद्यार्थी स्वय अपनी शक्ति को विकसित करने मे लग जाता है और ऊपर की स्थिति पर पहुचने के बाद अध्यापक को अक्षर पढाने की जरूरत नही रहती। वह आकर लेक्चर दे देगा और स्वय अध्यापक भी अपनी तरक्की करना चाहेगा। एम० ए० पास अध्यापक भी अपने आपके अनुसधान से भी आगे बढता है और पी–एच० डी० करने वाले लाइब्रेरियो की सहायता लेते हैं और अपने अन्दर के अनुभव के आधार पर डाक्ट्रेट के लिए पुस्तक लिखते हैं। इन क्षेत्रो मे भी ज्ञान का जो अर्जन करता है उसे अन्य का सहारा अमुक क्षेत्र तक ही काम आता है।

लेकिन यदि विद्यार्थी बीस वर्ष या सारी जिन्दगी भर अध्यापक के भरोसे ही रह कर एक कदम भी स्वय आगे नही रखे तो वह अपना ज्ञान बढा नहीं पाता है। उस विद्यार्थी की क्या दशा होगी ? वह एक तरह से ढोठीराम कहा जा सकता है।

मैं यहा प्रभु के दर्शन करने के सम्बन्ध मे सकेत दे रहा हू कि प्रभुदर्शन के लिए ज्ञानशक्ति सम्पादित करना है तो सतो की मदद ली जा सकती है, शास्त्रो की भी सहायता ली जा सकती है। लेकिन आप मदद पर ही निर्भर नहीं रहकर स्वय की चेतना को जागृत करेगे तो ज्ञानशक्ति का सम्पादन कर पाएँगे। और केवल मदद के ऊपर ही आधारित रह गए तो क्या दशा बनेगी, यह आप स्वय सोच लीजिये। मैं अपने मुँह से क्यो सर्टिफिकेट दू ?

आप अन्तर्मुख होकर स्वय देखिये, शक्ति आप मे हैं। वह कहीं बाहर नहीं है जिसे अपनी अनन्त शक्ति का उद्‌बोध हो गया वह अनन्त ज्ञानशक्ति को अपने ही अन्त करण मे प्रकट कर सकता है। हा, उसको प्रकट करने मे बाधाए भी आती हैं। उनका मैं कल कुछ जिक्र कर गया। वे पहाडिया हैं घाती कर्म। उनका पूरा वर्णन कल नही कर पाया, उसे थोडा आज स्पष्ट कर दू।

ज्ञानावरणीय कर्म घाती कर्म मे आया। वह किसने उपार्जन किया ? उसे पैदा किसने किया ? कर्म की सज्ञा उसे किसने दी ? क्या कहीं बाहर से आकर चिपक गया ? वह बाहर से नहीं आया

चैतन्य ने स्वय पैदा किया। और चैतन्य के साथ कर्मवर्गणा के पुद्गल सयुक्त हुए तो उनकी कर्मसज्ञा बनी। ज्ञानावरणीय कर्म को उपार्जन करने वाला आत्मा ही है, उसे तोडने वाला भी यही आत्मा है। कर्म उपार्जन करने मे ज्यादा कष्ट नही होता है। पर तोडने मे कुछ कठिनाई आ सकती है। ज्ञान पर द्वेष करने वाला व्यक्ति ज्ञानावरणीय कर्म का उपार्जन कर रहा है। वह सोचता है–यह ज्ञान क्या है ? कुछ नही। जिसको ज्ञान के प्रति रूचि नही, द्वेष है, ज्ञान के साधनो के प्रति द्वेष है तो वह ज्ञानावरणीय कर्म का उपार्जन कर लेता है भद्रिक भाई बहन इस बात को पूरा समझते नही। कभी–कभी ज्ञान सम्पादन कर रहा है तो उसके बीच मे जाकर अन्तराय डालते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान मे तो अन्तराय डालते हैं सो डालते हैं पर बाहरी ज्ञान मे भी कभी–कभी बाधक बन जाते हैं। बच्चा पढने बैठा है और माता को कोई छोटा काम हुआ, जिसे दूसरा भी कर सकता है, वह स्वय भी कर सकती है या जो अन्य समय भी किया जा सकता है। वह भद्रिक माता अज्ञानता के वश उस काम के लिए अन्तराय दे देती है। बच्चा पुस्तक लेकर बैठ गया तो कई माताए ऐसी भी होती है कि पुस्तक भी छिपा देती है और उससे अपना काम सम्पादित करवाती है। ऐसा करके वह स्वय अपने ज्ञान पर पर्दा डालने का कार्य करती हैं। मगर उनको इस प्रकार की बातो का पता ही नही है। वह दीर्घकाल से इसी अज्ञानता से परिपूर्ण हो कर चल रही है और इसलिए ही वह ज्ञान को ढकने वाला कर्म उपार्जन करती हैं। ज्ञान के साधन को, ज्ञान देने की शक्ति को या ज्ञान देने वाले को छिपाना आदि कारणो से भी उस व्यक्ति के ज्ञान पर कर्म का आवरण लगता है। ईर्षा आदि से ज्ञान को छिपाने की भावना है तो स्वय की जो कुछ उपलब्धि है उसे भी गुमा बैठता है। इत्यादि कारणो से ज्ञानवरण का जब तीव्र बध होता है तब उसका उदय आने पर प्राणी प्रबल पुरुषार्थ करके भी सफल नही होता।

स्वर्गीय आचार्य श्री जी महाराज साहब इस विषय मे एक रूपक फरमाया करते थे। एक हजामत करने वाला नाई बाल साफ करने के लिए जाता था। वह अपने शस्त्रो की पेटी को हाथ मे नही

उठाता बल्कि आकाश मे फेक देता। पेटी आकाश मे चलती और जहा हजामत करने का प्रसग आता, बैठ कर इशारा करता—'आओ' कहता और पेटी नीचे आ जाती। हज्जाम उसमे से उस्तरे निकाल कर फिर इशारा करता और पेटी आकाश मे ऊपर चढ जाती। उसकी दुकान जोरदार चलने लगी। लोग कहने लगे—नाई बडा चमत्कारी है। उसका चमत्कार फैलते फैलते चारो ओर फैलने लगा।

एक साधक को यह कला सीखने की प्रबल इच्छा हुई। वह पूरा साधु तो नहीं था पर साधु की पोषाक पहन कर बाबा रूप मे फिर रहा था। उसने देखा कि मुझे ऐसी कोई उपलब्धि नहीं हुई और नाई के पास ऐसा चमत्कार कहा से आ गया ? कम से कम उससे यह कला सीख कर चमत्कारी रूप दिखाऊँ। वह बाबा एकाकी नाई के पास गया और बोला—भाई, जिस विद्या से तुम्हारी यह पेटी आकाश मे चलती है वह विद्या मुझे सिखा दो और बदले मे चाहो सो कीमत ले लो। मैं कीमत देने को तैयार हूँ। नाई ने कीमत लेकर वह विद्या सिखा दी।

वह साधु उस विद्या को प्राप्त कर लेता है। अब उसके डड कमडल, लगोटी वगैरह आकाश मे अधर चलते हैं कही किसी घर मे पहुँचा और कुछ लेने की आवश्यकता हुई तो वह इशारा करता है। कमडल नीचे आ जाता है। वह उसे काम मे लेकर फिर आकाश मे छोड देता है। लोगो मे उसकी ख्याति भी बढने लगी। उसने सोचा—यहा तो नाई के पास भी ऐसी विद्या है। यहा रहूँगा तो मेरी विद्या कोई महत्व नहीं होगा। इसलिए मुझे कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिये। ऐसा सोच कर वह दूसरे शहर मे चला गया। वहा उसके चमत्कार की ख्याति प्रसारित होती—होती राजा के कानो तक पहुँची। राजा को ज्ञात हुआ कि एक बाबा अपने डड कमडल कपडे आकाश मे रखता है। राजा ने दीवान से कहा—ऐसे साधक को राजभवन मे लाना चाहिये। दीवान ने उस साधक को राजभवन मे बुलाया। राजा ने भिक्षा देने की भावना की तो उसने कमडल जो ऊपर आकाश मे चल रहा था, नीचे बुलाया। राजा से उसने भिक्षा ग्रहण की ओर आकाश मे भेज दिया।

राजा कहने लगा–भगवन् ! ऐसी सिद्धि आपको कहा से प्राप्त हुई ? अब बाबाजी सोचने लगे कि राजा को क्या जवाब दू ? यथार्थ बात कहूँगा कि यह विद्या तो मैने नाई से सीखी है तो मेरी कीमत नही रहेगी। इनको तो कुछ और ही बताना चाहिये ! उसने नाई का नाम छिपाकर कहा–राजन् ! मै हिमालय की तलहटी मे गया। वहा बडे–बडे योगी जन योगसाधना कर रहे थे। मैने भी योगसाधना की। योगी मेरी साधना से प्रसन्न हुए और मैने यह विद्या प्राप्त की।

ज्यो ही वह विद्यादाता का नाम छिपाकर बनावटी बात रखता है, ऊपर से डड कमडल नीचे आकर गिर पडते है। राजा ने कहा–सच्ची बात बताइये ? आखिर उसे सच कहना पडा कि मैंने यह विद्या नाई से सीखी है। उसके नाम को मैने छिपाकर बात कही इसलिए मेरी यह ऋद्धि अब नही रही। उस पर आवरण आ गया है। यह तो एक रूपक है। तत्त्वार्थसूत्र मे शास्त्रकारो ने सकेत दिया –

तत्व दोषनिह्मवमात्सर्यान्तरायासा
दानोपघाता ज्ञानदर्शनवरणयो ,, 2।।

तत्वार्थ सूत्र अ० 6

ज्ञान पर द्वेष करना एव ज्ञानी के नाम को छिपाना भी ज्ञानावरणीय कर्म के बन्ध का कारण है और इससे ज्ञानशक्ति का नाश होता है। वह मानो अपनी ज्ञानशक्ति को पहाड के नीचे दबाने का काम करता है। इसी तरह से मात्सर्य है। जिसमे ज्ञान की शक्ति है, जो योग्य पात्र है वह सामने आया। गुरु सोचता है–योग्य पात्र सामने आया है इसे यदि ज्ञान दूगा तो यह मेरे से आगे बढ जायेगा, अतएव इसे ज्ञान नही देना चाहिए। इत्यादि प्रकार की भावना जिसमे है, वह भी ज्ञानावरणीय कर्म का उपार्जन करता है। अपनी ज्ञानशक्ति को खोता है, उसमे बाधक बनता है। कोई किसी के पास धार्मिक ज्ञान सीखने जाता है और उसे कोई रोकता है तो वह भी जबर्दस्त कर्मबन्धन का कारण है।

इसके साथ ही साथ असादना बताई गई। ज्ञान की शक्ति है और कोई व्यक्ति पूछता है कि आपके अन्दर बहुत ज्ञान है उसमे से

मुझे कुछ दीजिये। वह इन्कार कर देता है कि मेरे पास ज्ञान है ही नहीं। अथवा ज्ञान के साधन होते हुए भी इन्कार कर देता है तो वह भी ज्ञानावरणीय कर्म बाधता है। इसके अतिरिक्त ज्ञान की घात करना भी कर्मबन्ध का कारण होता है। ज्ञान को अज्ञान आदि रूप मे बताता है तो वह अपने ज्ञान को मारने की चेष्टा करता है। वह भी जबरदस्त कर्म बाधकर ज्ञान दीपक को नष्ट करता है यानि तिरोहित करता है, उसे ओझल करता है।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के कारण समान है। ज्ञान–विषयक प्रदोष, मात्सर्य आदि ज्ञानावरण के बध के कारण हैं तो दर्शन विषयक यही कारण दर्शनावरण के उपार्जन मे निमित्त बन जाते हैं। ये डूगर आत्मा की शक्ति पर आकर आडे पड जाते हैं। फिर जीव प्रयास करता है तो भी जल्दी ज्ञान नही आता। कई भाई कहते हैं–महाराज, मैं रटता तो बहुत हूँ पर याद नही होता। पर उसे यह सोचना चाहिये कि मैंने ज्ञानावरणीय कर्म कितने बाधे हैं ?

ज्ञानपचमी के रोज मेरे भाई 'नमो नाणस्स की माला फेरते हैं, उपवास भी करते हैं पर ज्ञान के आवरण के कारण क्या है उनको वे छोडते हैं या नहीं ? अगर ज्ञान के आवरण को हटाने की ओर प्रयास नहीं करते और केवल मुह से 'नमो नाणस्स' की माला फेरकर उच्चारण मात्र ही कर लेते है तो ज्ञानपचमी की आराधना सही रूप से नहीं होती। ज्ञान के आवरण हटे बिना सही देखने की शक्ति नही आती। ज्ञान के आगे घाती डूगर पडे हुए है। कवि कहता है –

घाती डूगर आडा अति घणा, तुज दरिशण जगनाथ,
ढिठाई करी मारग सचरू, सेंगु कोई न साथ।। 4 अभि०।।

ज्ञानावरणीय कर्म कैसे बधते हैं और इन घाती डूगरो के नीचे दबी पडी आत्मा को कैसे ऊपर लाया जाता है, इसका विज्ञान आवश्यक है। यह विज्ञान जिसके मस्तिष्क मे आ गया उसकी ज्ञान–शक्ति विकसित होते देर नहीं लगती है।

यह कला जिनमे होती है वे हर क्षेत्र मे अपनी कला का प्रयोग करने की कोशिश करते हैं। जरा विचार करने की बात है। महारानी पुष्पदन्ती अपने गर्भ की सुरक्षा के लिए क्या चिन्तन कर रही

है ? उसके जीवन मे ज्ञान का आलोक कुछ मात्रा मे विद्यमान था। अपनी ज्ञानशक्ति से वह गर्भ का अवलोकन कर रही थी, चिन्तन कर रही थी कि मेरी कुक्षि मे वह पुण्यात्मा आया तो यह आगे चलकर अपने जीवन को मगलमय बनावे और अपने परिवार के चार चाद लगावे। मै भी भावी जीवन को उज्ज्वल बना सकू। इस भावना से वह अपने गर्भ का सगोपन कर रही है। माता दान, शील, तप और भावना के साथ अपने जीवन को आगे बढाने के लिए सकल्प लेकर चल रही है।

दान की व्याख्या कल की थी, अब आगे शील के सबध मे कुछ विचार करे। शील का अर्थ स्वभाव भी है और ब्रह्मचर्य भी है। ब्रह्मचर्य की तो वह प्रतिज्ञा कर लेती है कि जब तक गर्भ की अवस्था है तब तक मैं अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करूगी। शक्ति से वह स्वभाव की स्थिति ले रही है कि मेरी भावना इस प्रकार रहे जिससे इस महापुरुष के अन्दर ज्ञान की शक्ति बढे। मैं सबके साथ भलाई का बर्ताव करू।

शील के साथ वह तप की भावना भी रखती थी। वह तप को भी यथास्थान लेकर चलने वाली थी। वह विज्ञानवान थी। वह बारह प्रकार के तपो को समझती थी। भगवान महावीर ने बारह प्रकार के तप बतलाये जिनमे बाह्य और अन्तरग तप दोनो हैं। बाह्य तप मे अनशन, ऊनोदरी आदि है। इस प्रकार अनशन उन तपो के बारह भेदो मे से एक है। आजकल मेरे भाई बहन प्राय अनशन को ही तप समझते है और अधिकाश उसी के पीछे अपनी शक्ति का प्रयोग करते है। लेकिन इसके साथ आगे के तपो को भी ध्यान मे रखना चाहिये पर इसमे भी विवेक की आवश्यकता है। कभी–कभी विवेक नही रहता तो अनशन तप के माध्यम से अकाज होने की स्थिति भी बन सकती है। उपवास किस हालत मे किया जाय ? भाइयो के लिए शक्ति के अनुसार हर समय छूट है पर बहनो के लिए द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को ध्यान मे रखते हुए उपवास बताया है। जो माता गर्भवती हो उसे उपवास करने की आवश्यकता नहीं। यदि वह गर्भावस्था मे उपवास करती है तो मूलव्रत मे अतिचार लगता है। कई बहनो को ख्याल नहीं

कि मूलव्रत क्या है ? मूल होता है तो फिर उत्तरव्रतरूप शाखाऐ व टहनिये होती हैं। श्रावक के लिए पाच अणुव्रत मूल हैं। उनमे प्रथम प्राणातिपातविरमण व्रत है जिसमे स्थूल प्राणातिपात का त्याग किया जाता है। निरपराधी निरपेक्ष, त्रस प्राणी को सकल्प करके इरादतन नहीं मारने की प्रतिज्ञा होती है। उसके अतिचार बताये गये हैं जो अभी अमर मुनिजी ने आपको बताये।

यदि गर्भवती माता अनशन तपस्या करती है तो गर्भ मे रहे बच्चे के लिए भात–प्राणीविच्छेद नाम का अतिचार लगाती है। ऐसी तपस्या करते समय कभी–कभी बच्चे की घात हो गई, ऐसा भी सुनने मे आया। इसलिए बहनो को गर्भ की स्थिति मे लम्बी तपश्चर्या तो दूर, पर उपवास का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। सन्त–सती के सामने पच्चखने के लिए खडी हो तो उनको भी ख्याल रखना चाहिये कि गर्भवती स्त्री को उपवास नहीं पच्चखावे। कदाचित् उनको ख्याल रहे या नहीं, पर बहनो को ध्यान रखना चाहिये। अगर बहने नहीं सोचती हैं तो मूल को ठेस पहुचाने का अतिचार करती हैं। बच्चे की घात हो जाती है तो अनाचार हो जाता है। क्योकि गर्भ मे रहने वाला बच्चा अपराधी नहीं है। अगर वहॉ माता विवेक न रखकर तपस्या करती है और कदाचित् गर्भ की घात हो जाती है तो घोर हिसा होती है। वह जैन धर्म के स्वरूप को नहीं समझती। वह अपने जीवन को गलत रास्ते ले जाती है। कभी–कभी सात कर्म और कभी–कभी आठ कर्म का गाढा बन्ध कर लेती है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय, और अन्तराय ये कर्म तो अच्छी तरह बन्ध जाते हैं। वह बहन आन्तरिक शक्ति से भगवान् के दर्शन करना चाहेगी तो अन्दर की शक्ति जल्दी खुलेगी नही वरन् मन्दप्राय हो सकती है। इसलिए तप के स्वरूप को समझ कर उसके विज्ञान के साथ तप करने की आवश्यकता है।

महारानी सोच रही थी मुझे ऐसा तप नही करना है पर तप छोडना भी नहीं है। एक अनशन को छोडकर मैं ऊनोदरी तप कर सकती हूँ। भिक्षाचरी का प्रसग नहीं है तो इन्द्रियप्रति सलीनता रूप तप तो कर सकती हूँ। मैं अपनी इन्द्रियो को गोपन करके रक्खू यह

ऐसे वीर के हाथ मे रहे जो दुनिया की अनैतिकता का सहार कर नैतिकता के साथ जीवन की रक्षा करे। मेरी सन्तान अनैतिकता के मुकाबले के लिए शस्त्र काम मे ले, यह बात अलग है पर गरीबो की घात नहीं करे। वह नीति–बल को प्रश्रय देने के साथ अनेक भावनाएँ रख रही थी। और उसके मन मे अनेक तरह के शुभ दोहले भी उत्पन्न हो रहे थे। शुभ दोहले भी विशिष्ट आत्माओ के गर्भ मे आने पर होते हैं। उसमे प्रधानता गर्भ मे आने वाली आत्मा की रहती है। यदि गर्भ मे आने वाली आत्मा पुण्य की कमी वाली है तो माता को अच्छी भावना पैदा होना तो दूर रहा, कभी–कभी बहुत नीची भावना के दोहले भी उत्पन्न हो जाते हैं। मिट्टी खाने की भावना उनमे से एक है।

आजकल मेरी माताए क्या भावना करती है ? मैं कभी–कभी सुनता हूँ। कभी भद्रिक बहिने स्वभाव से शिकायत रख देती हैं कि महाराज, इस बीनणी को माटी खाने का त्याग करा दो। वह मिट्टी कब खाती है ? जब गर्भ मे सन्तान होती है। वह कैसी सन्तान आई है कि माता मिट्टी खाने वाली बनी। यह भावना का रूपक जिस समय आता है तक समझना चाहिये कि उसका और सन्तान का दुर्भाग्य है। इस विज्ञान के अभाव मे मानव का चोला अधकार मे भटक रहा है। ज्ञान के नेत्र आवे तो कैसे ? पर महारानी इस प्रकार के विज्ञान को समझने वाली थी। उसके मन मे सन्तदर्शन की अभिलाषा रहती थी। वह सोचती थी कि सन्तो के दर्शन कर मैं अपने जीवन को धन्य बनाऊँ। वह ख्याल रखती थी कि मैं गर्भ की स्थिति को लेकर चल रही हूँ तो जब छ मास के ऊपर की स्थिति का प्रसग आता है, वहा उठ–बैठकर वन्दना नही की जाती। वह घुटने अवश्य टेक देती है। उठ–बैठकर वन्दन करने के पीछे भी गर्भ को कष्ट न होने का ख्याल है। सन्तदर्शन से ज्ञान के आलोक और त्यागमय जीवन के दर्शन होते हैं। वह सोचती है–मुझे शास्त्रश्रवण मिलता रहे। वह ध्यान मौन का भी ख्याल रखती थी। वह सभी के साथ मधुर बर्ताव करके चलती थी। जहा गर्भावस्था के कारण अन्य बहिने गृहस्थाश्रम की स्थिति सम्बन्धी बातें रखती तो वह उन्हे कह देती कि बाते करनी हो तो सुदेव सुगुरु सुधर्म को समझने की चेष्टा करो। वह अन्य बातो पर

चर्चा कम करती थी।

आजकल की माताओ का नक्शा क्या है ? आज क्या इस प्रकार का बर्ताव होता है ? इस प्रकार के सब लक्षणो का पालन किया जाता है ? अरे और जगह तो नही होता है तो न सही, पर यहा धर्मस्थान मे पालन होता है ? किससे पूछू ? चुप्पी साथ लेना ही ठीक है। धर्मस्थान मे भाई बहिन पहुँचते है, दूर–दूर से आते है। यहा पहुँचने पर भी सुदेव, सुगुरु, सुधर्म की चर्चाए कितनी मात्रा मे होती है ? ज्ञान जगाने का कितना प्रयास होता है ? जहा तक मेरे कान पर शब्द आते हैं, मैं कुछ ही शब्द सुनता हूँ, उन शब्दो के माध्यम से थोडा उनके जीवन का अकन कर लेता हू। इधर–उधर की बाते करने, रागद्वेष की वृद्धि करने, कलुषितता पैदा करने आदि की बाते क्या है ? क्या ये ज्ञानज्योति को जगाने वाली बाते हैं ? धर्मस्थान मे जहा तक व्याख्यान चले मौन रखना चाहिये, चुपचाप रहना चाहिये। व्याख्यान के पश्चात् भी पौषध सामायिक हो तो उनके अन्दर सुदेव, सुगुरु, सुधर्म एव तत्त्व की चर्चा होनी चाहिये, शान्ति के साथ ज्ञान को समझने की भावना रखनी चाहिये। इस प्रकार का दृढ सकल्प होना चाहिये। यदि यहा भी एक दूसरे की निन्दा की गई, आपस मे द्वेष पैदा करने वाली बाते की गई तो वह तो अपने जीवन को अज्ञान–अधकार मे ढकेलना है।

महारानी अपने जीवन को अज्ञान–अन्धकार मे ढकेलने वाली नही थी। वह स्वय के जीवन को उज्ज्वल बनाते हुए गर्भ की सुरक्षा के लिए तत्पर थी। उसका नक्शा मुनिराज जगल मे नल राजकुमार आदि श्रोताओ को सुना रहे थे।

गर्भ का निर्वाह महारानी नियमो के साथ कर रही थी। महात्मा, नल को सम्बोधन करके कह रहे है–राजकुमार, तू यह जानने को उत्सुक है कि दमयन्ती मे वह चमत्कार कहा से आया, इसकी जड जान ले। दमयन्ती की माता पुष्पदन्ती ने उसे इस प्रकार के सुन्दरतम सस्कार दिये। वह तुम्हारी अनेक जन्मो की सगिनी है।

लेकिन राजकुमार नल की जिज्ञासा अभी तक पूरी शान्त नही हुई। नल सोच रहा था कि माता ने वे सस्कार दिये तो क्या

उससे वह पलटा आ गया ? वह प्रकाश उसी से आया या और भी कोई कारण है ? इस बात की जिज्ञासा से वह आगे की बात भी सुनने के लिए लालायित है। मुनिराज आगे और कहने के लिए तत्पर हो रहे हैं, वह स्थिति धीरे–धीरे आपके सामने आ रही है।

आपकी इन घडियो मे विषमता है ! यहा कुछ और समय है ऊपर कुछ और। ये घडिया क्या हैं ? जड हैं या चेतन ? घडिया जड है। चेतन अपने काटे को ठीक तरह से सभाले। ये घडिया तो आगे पीछे चल सकती हैं। ये किसी भी तरह से चले, कोई बात नहीं। आपको अपने अन्दर के काटे को देखना है। उसे देखने की योग्यता प्राप्त हो गई तो आपकी गति सुन्दर ढग से अग्रसर होती हुई ज्ञान का आलोक प्राप्त कर सकेगी।

इसी शुभ भावना के साथ

अणु से विराट की ओर

अभिनन्दन जिनदर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जई पूछिये, सहु थापे अहमेव ।।1।।
घाती डूगर आडा अति घणा, तुज दरिशन जगनाथ,
ढिठाई करी मारग सचरू, सेगु कोई न साथ ।।2।।

ये अभिनन्दन परमात्मा की स्तुति की कडिया है। परमात्मा की स्तुति परमात्मा के लिए नहीं है। ईश्वर के गुणगान ईश्वर के लिए नही हो सकते। स्तुति गाने वाले या सुनने वालो के लिए है। स्तुति भगवान् की होती है पर काम स्वय का होता है। स्वय व्यक्ति जिस पिण्ड के अन्दर रह रहा है उस पिण्ड का काम नही बनता है तो कुछ भी नही बनता। पिण्ड सिर्फ जड तत्त्व का ही नही है। ऐसे पिण्डसज्ञा जड तत्त्व को दी जा सकती है पर अभी जिस पिण्ड शब्द के लिए मै कुछ कह रहा हूँ उससे चैतन्य युक्त पिण्ड का सकेत ले। इस शरीर रूपी पिण्ड के अन्दर कौनसा तत्त्व है कि जिसके लिए वह अपनी आवाज को बुलन्द करे ? कौनसी कमी है जिसके लिए हाथ फैलाकर ग्रहण करने की सोचे ? कौनसा ज्ञान उसके अन्दर नही है ? कौनसी ताकत उसमे नहीं ? इस जीवन के अन्दर सब कुछ है। कही बाहर आने की आवश्यकता नहीं। लेकिन सब कुछ होते हुए भी आत्मा कुछ भी नहीं देख पा रही है। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिसके पास अपूर्व खजाना है, अलभ्य लब्धि है और वह अपने आपको दरिद्र समझे, भिक्षुक समझे, कमजोर समझे, बुजदिल समझे, उस व्यक्ति को

आप क्या कहेगे ? क्या ये सारी बाते उसे अन्दर नही पाई जाती हैं ?

यह समझना बहुत बडा भ्रम है कि मैं कमजोर हूँ, कायर हूँ, वुजदिल हूँ, मैं अपने आप मे कुछ भी नही। मैं दरिद्र, निर्धन हूँ। इस प्रकार की कल्पना भी एक तरह से गरीब बना रही है। इन्सान को ऐसी कल्पना को क्षण भर भी अपने चित्त मे स्थान नहीं देना चाहिये। जो अपने स्वरूप को ठीक तरह से समझ लेता है, जीवन को पुष्ट वनाने की कोशिश करता है, शक्ति सम्पादन करने का प्रयास करता है वह इस छोटे से पिण्ड मे रहते हुए भी महान् बन जाता है, विराट बन जाता है, व्यापक और विशाल शक्ति के पुज के रूप मे परिणत हो जाता है। इसके लिए भगवान् हमारे समक्ष आदर्श हैं। पर मनुष्य हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाय तो भगवान् भी उसे चला नहीं सकते। मनुष्य के अन्दर की शक्ति को वे खीच कर प्रकट नही कर सकते। ऐसे तो भगवान अनन्त शक्ति से सम्पन्न हैं पर वे ऐसा करते नहीं, कर सकते भी नहीं, क्योकि वे सिद्ध बुद्ध निरजन बन चुके हैं। अत तटस्थ दृष्टा के रूप मे रहते हैं। मनुष्य को उनकी शक्ति देखकर स्वय की शक्ति को पहिचानना है। उनके आदर्श को देखकर स्वय को जागृत करना है। वह योग्यता स्वय मे है।

कवि ने अपनी प्रार्थना की कडियो मे कुछ सकेत दिया –

घाती डूगर आडा अति घणा,
तुज दरिशण जगनाथ
ढिठाई करी मारग सचरू
सेगु कोई न साथ।

भगवन् ! मैं आपके उस आर्दश जीवन के दर्शन करने के लिए तत्पर हो रहा हूँ पर बीच मे घाती डूगर आडे आ गये। उनकी परवाह नहीं करके ढीठ बनकर आगे बढने की चेष्टा करता हूँ फिर भी साथ किसी का नहीं। अर्थात् मैं बिना साथ के चल रहा हू। दूसरो को साथ लेना उनके सहारे से चलना यह स्थिति भी इस समय मेरे पास नहीं है। मैं स्वय अपने साहस के बल पर चलने की कोशिश कर रहा हूँ।

कविता की कडिया किसी रूप मे हो लेकिन श्रोताओ को उन

कडियो के भाव को–मर्म को ग्रहण करना चाहिये और अपनी ईश्व
शक्ति को जगाने का प्रयास करना चाहिये। इस छोटे से जीव
आप अपने को क्षुद्र मानना छोड दे और महान विशालतम जीवन
अन्दर मे जागृत करे तो फिर किसी के सहारे की आवश्यकता
रहती। आप स्वय अपनी शक्ति से चल पडेगे। आप स्वय से ज
होगे। आप स्वय अपने आपसे परिपूर्ण बनेगे। इस परिपूर्णता की
ही सीखने की आवश्यकता है। वह परिपूर्णता क्यो नही प्राप्त हो
है ? उसमे बाधक कौन से तत्त्व है ? वे डूगर कौन से हैं ?

वे बाहर के डूगर नही। बाहर की पहाडियो से यहा सम
नही है। अन्दर की पहाडिया ही आत्मा की परिपूर्ण शक्ति
आच्छादित कर रही है।

दाणे लाभे य भोगे य, उपभोगे वीरिए तहा
पचविहमन्तराय, समासेण वियाहिय।

–उ सू अ 33 गा

प्रभु महावीर ने इस मानव को सम्बोधन करके निर्देश
कि मानव ! तू इस चोले के अन्दर दान, लाभ, भोग, उपभोग और
की ताकत से परिपूर्ण है। तू दान की शक्ति से परिपूर्ण दातार है।
विश्व का तू अपनी शक्ति को विकसित करके एक महान् दाता
रूप मे निमित्त बन सकता है। सारे ससार को तू लाभान्वित
सकता है। सारे विश्व के भोग और उपभोग के साधनो को उप
कर सकता है और अनन्त वीर्य की शक्ति का सम्पादन कर स
है। किन्तु इन पाचो शक्तियो के ऊपर बहुत सघन आवरण है इस
तुझे उनका वास्तविक लाभ प्राप्त नही हो रहा है।

लाभ के लिए हर व्यक्ति लालायित रहता है। कौन
चाहता कि मुझे ससार की सब सुख–सामग्री मिले ? मैं किसी च
से वचित नही रहूँ। किसी सुखसाधन–सामग्री से अलग न रहूँ।
भावना रहते हुए भी प्रत्येक मनुष्य भावना के अनुरूप लाभ को प्र
क्यो नहीं कर रहा है ? वह लाभ प्राप्त क्यो नही हो रहा है जब
उसके पिण्ड मे अनन्त लाभ की शक्ति विद्यमान है ? वह शक्ति जी
मे व्यक्त क्यो नही हो रही है ? केवल शब्द से कह देने मात्र

उपलब्धि नहीं होती। मनुष्य रात–दिन चिन्ता मे रहता है कि मुझे अमुक चीज चाहिये। उसके लिए वह कोशिश भी करता है। पर क्या उसे शताश मे भी प्राप्त कर सकता है ? कभी–कभी कोशिश करते हुए समीप मे आये हुये फल से अचानक हतोत्साहित होना पडता है। मानव बोलता है–मेरे मुँह से नवाला चला गया। अरे किसने खीच लिया ? क्या किसी दूसरे व्यक्ति ने खींच लिया ? एक दृष्टि से देखा जाय तो दूसरा निमित्त मात्र होता है पर स्वय की तथा प्रकार की कृति का फल अन्दर मे उदय आ गया जिससे हाथ आया हुआ लाभ चला गया। तुमने अपने अन्दर मे इस प्रकार की चट्टान तैयार कर रखी है कि जिससे वह लाभ तुम्हारे नजदीक आकर भी चला गया। वह स्थिति मनुष्य ने स्वय तैयार की है, किसी दूसरे ने नहीं। अन्य किसी व्यक्ति ने लाभान्तराय पैदा नहीं किया बल्कि तुमने स्वय ने ही पैदा किया है।

इन्सान सहजभाव से चलता है। सोचता है–पडौसी के यहा अमुक तरह का लाभ हो रहा है, यह लाभ उसे न हो तो अच्छा। पडौसी के लाभ को रोकने का प्रयत्न करता है। मन मे समझता है–लाभ हो गया तो वह मुझ से ऊचा हो जायगा। वह अन्तराय स्वरूप बनता है, बाधक बनता है। परिणाम यह आता है कि स्वय अपने आपके लिए अन्तराय कर्म का उपार्जन कर लेता है। उस पडौसी के अन्तराय कर्म का उदय होगा तो उसका लाभ रुकेगा पर स्वय का लाभ तो रुकता ही है, स्वय की स्थिति खण्डित हो जायगी। उसने स्वय ने अपने लाभ पर तो आवरण दे ही दिया। जो दूसरो के लिए बाधक बनता चला जाता है उसके लिए दुनिया साधक बने यह स्थिति सभवित नहीं। यदि तू अपने लाभ की अभिलाषा रखता है तो दूसरो के लिए अन्तराय का कारण न बन।

लाभ कई तरह के होते हैं। केवल बाह्य पदार्थो का ही लाभ नही है आन्तरिक शक्तियो के लाभ से भी लाभान्वित होना चाहता है तो सबको खुली परवानगी दे सबके लिए दरवाजा खोल दे सबको अपने–अपने स्थान शक्ति के अनुसार वास्तविक आत्मीय खजाने को लेने दे। तेरे बाधक बनने से वह स्थिति तेरे काबू मे नही आ सकती।

बाधक प्राय अपना ही बनेगा, दूसरो के लिए बाधा डालने मे कामयाबी नही होगी। दूसरे के लिए बाधक बनने की मलीन भावना के पीछे इन्सान ने अपनी शक्ति को निर्बलता मे परिणत किया है। उससे लाभ की आशा कम ही रहती है।

आज का मानव समुदाय प्राय इसी भावना के साथ दौड रहा है। स्वय को लाभान्वित करना, दूसरो को धोखा देना, दूसरो के लिए कुछ नहीं छोडना, स्वय के लिए भोगोपभोग के पदार्थ जुटाना आदि–आदि भावना उसके जीवन को कुण्ठित करने वाली बनती है। जब ऐसी भावना इन्सान की बन रही है तो वह व्यापक विशाल कैसे बने ? सोचिये कि एक पुरुष स्वय एक घेरे मे जाकर पत्थर पकडने की चेष्टा करे, पत्थर से चिपक कर बैठ जाय तो पत्थर की चट्टान उसके शरीर की गति को भी रोक देती है। वैसे ही मानव की आन्तरिक मनोवृत्तिया ममत्व रूप से बाहरी पदार्थो के साथ चिपकती है तो उसकी आन्तरिक शक्ति उस ममत्व के साथ कुण्ठित होकर अवरुद्ध हो जाती है अर्थात् वह आन्तरिक ममत्व रूप चट्टान से आगे नहीं बढ सकता। यदि पत्थर हटाकर खुले आकाश मे गमन करता है तो वह व्यक्ति अपनी स्थिति को आगे बढाता हुआ लाभ प्राप्त कर सकता है।

आप आज वैज्ञानिक युग मे कुछ उपलब्धिया देख रहे हैं। वैज्ञानिक लोग पुरुषार्थबल से आकाश मे उडने की चेष्टा कर रहे हैं पर किससे ? हवाई जहाज से। हवाई जहाज कहा उडेगा ? चट्टानो के बीच मे या बिना चट्टान के आकाश मे ? चट्टानो रहित खुले आकाश मे अबाधित गति से हवाई जहाज उड जाता है लेकिन चट्टानो के बीच मे हवाई जहाज नही जा सकता। यदि चला भी गया तो वह चट्टानो से टकरा कर खत्म हो सकता है। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से भी ऊपर उठने का विकास हुआ तो आकाश मे हुआ, चट्टानो के बीच मे नही।

तो, मानव अपनी अन्दर की शक्ति को विकसित करने के लिए आकाश की तरह से व्यापक बने। उसे आकाश के समान बनना चाहिये। आप सोचते होगे–महाराज चट्टाने कहा से ला रहे हैं ? मैं उन बाहरी चट्टानो के लिए नहीं कह रहा हूँ। अन्दर की चट्टानो का

जिक्र कर रहा हूँ। आपके अन्दर यो स्थूल रूप मे तो चट्टाने नहीं दिखती पर आपका अन्तर चट्टानो से चिपका हुआ है। बैठे यहा हो, किसी खम्भे को पकड कर नही बैठे हो। चट्टान तो दूर रही बाहर ककर भी हाथ मे नहीं है। पर आपका मन, दिल–दिमाग उस चट्टान के वजन से खाली है या दबा हुआ है ? बैठे तो यहा हो मेरे सामने। पर आपका दिल खुल नही रहा है। वह बन्द क्यो है ? कुन्द क्यो हो रहा है ? वह कारण क्या है ? आपका दिल उस ममत्व मे रहा हुआ है, सपत्ति मे रमा हुआ है। इस प्रकार सत्ता, सम्पत्ति, अधिकार का नक्शा आपके मन मस्तिष्क मे घूम रहा है। क्या इस सम्पत्ति इस धन, इन बडी–बडी हवेलियो आदि के प्रति जो ममत्व है वह चट्टाने हैं या आकाश है ? कदाचित कोई मनुष्य, चट्टान को जाने दीजिए, किसी पत्थर को शरीर पर बाध कर ऊपर से कूदे तो वह कहा गिरेगा ? नीचे या ऊपर ? आप जानते हैं वह नीचे गिरेगा।

कभी–कभी सैनिक छाता लेकर हवाई जहाज से नीचे उतरते हैं। छाता खुल जाने से वह एकदम नीचे नही गिरता। स्थूल शरीर से भी नीचे जाता है तो सूक्ष्म शरीर, जो कर्म रूप है, ओर वह आत्मा के साथ जब तक जकडा हुआ है, उसमे अति क्रूर भावना का दौर–दौरा है तो वह भी पतन की ओर जायगा। मनुष्य के मन मे मूर्छा रूप परिग्रह का भाव मन–मस्तिष्क को भारी बनाकर चल रहा है जिससे एक क्षण के लिए भी सोचने की फुर्सत नहीं मिल पा रही है। कभी–कभी सत लोग कहते हैं–भाई धार्मिक कृत्य के लिए समय निकालो तो मेरे भाई कहते हैं क्या करे महाराज, समय नहीं मिलता। अरे भाई समय कहा जा रहा है ? चौबीस घण्टे मे से अधिकांश समय किधर जा रहा है ? आप किधर जा रहे है ? यह स्वयं को सोचने का विषय है। यो एक दृष्टि से आप जा कहीं नहीं रहे है, वही के वही है। घाणी के बैल की तरह उसी स्थान पर खडे है उस घेरे से दो कदम नहीं आए है। आप जानते है तेल की घाणी चलती है। य[illegible] भी तेल निकलता है। तेली बैलो को घाणी [illegible]पट्टी बाध देता है फिर वह बैल चलता सूर्योदय से सूर्यास्त तक चलता

है। वह बैल मन मे सोचता है आज तो बहुत चला । वह थकान अनुभव करता है। लेकिन सध्या के समय आख से पट्टी खुलती है तो अपने आपको कहा पाता है ? जहा था वही। उस घेरे से कुछ भी आगे नही बढा, उसी घेरे मे दिन भर की यात्रा हुई वह अपनी थकावट पर क्या महसूस करता होगा ? वह तो पशु है। मै उसका क्या जिक्र करू। मैं तो मानव की स्थिति का जिक्र कर रहा हूँ।

आज का मानव क्या आगे बढ रहा है या बैल की तरह ही चक्कर काट रहा है ? मानव कुछ आगे बढा या नही ? क्या वह उसी स्थान मे घूम रहा है ? क्या आख पर पट्टी बाध रखी है ? मानव बाहर से कोई पट्टी बाधे हुए नही है। पर उसने अपनी आत्म–शक्ति कुण्ठित कर ली है, इसलिए वह उसी घेरे मे चल रहा है। जब पट्टी खुलेगी तो महसूस करेगा कि अरे, मैने इतना श्रम किया वह बेकार गया। मानव दिन–रात शरीर की अपेक्षा मानसिक स्थिति से ज्यादा घूम रहा है। क्या उसे घाणी के बैल की उपमा दू ? नही। तो किसकी उपमा दू ?

भारत के एक नेता ने तो भारतीय पशु की स्थिति को निश्चित करने के लिए एक वक्तव्य मे कह दिया कि भारत का राष्ट्रीय पशु मनुष्य घोषित कर दिया जाना चाहिये। बन्धुओ । जरा ख्याल करने की बात है। आपको ये बाते कुछ अटपटी लगेगी पर अटपटी के साथ चटपटी लग जाएँ तो आपकी गति प्रगति बन जाय और मुक्ति की स्थिति सामने आ जाय।

आज इस परिग्रह के घेरे से मनुष्य क्या बन रहा है ? सोते, उठते, बैठते, खाते, पीते वह भार नही उतारता। क्या नीद के समय वह भार उतरता है ? थोडा वजन नीचे रखकर सोते हो ? सोते समय मे भी मस्तिष्क भारी रहता है या हल्का ? बहुत से भाइयो को वैसे ही स्वप्न आते रहते हैं और रात्रि गुजर जाती है। निद्रा से शरीर की थकान जो दूर होनी चाहिये थी वह भी दूर नही होती। क्या यह जीवन इसी तरह से बर्बाद करने के लिए है ? यह कीमती जीवन चट्टानो के साथ टकराते रहने के लिए नही। इसे तो चट्टान रहित मार्ग पर लगाने की आवश्यकता है। आकाश अपने मे एक दृष्टि से

सव तत्त्वो को रखते हुए भी सदा उन तत्त्वो से रहित है। आकाश को वाह्य तत्त्व पकड नही पाते। अवकाश दे देगा मगर उसमे किसी चीज के प्रति लगाव नहीं है। इसलिए वह मुक्त कहलाता है, समता का आदर्श उपस्थित करता है। आकाश की स्थिति मानव मात्र के लिए अनुकरणीय है।

आकाश मे कौन रह सकता है ? गरीब रहे या धनवान रहे, या मूर्ख रहे, पशु रहे या मनुष्य रहे ? सबको आकाश अपने मे स्थान देता हुआ भी स्वय अलिप्त रहता है। जो दशा आकाश की है वही दशा चेतना की भी बन जाय तो चेतना अपने आपमे समभावी बनती है और परिग्रह की चट्टानो को छोडती जाती है। और आवश्यक सयम साधना की सामग्री के पास रहती हुई स्वतन्त्र रह सकती है। इस प्रकार की दशा कब बन सकती है ? ऐसी भावना कब आती है ? जब मनुष्य वास्तविक रूप से अपने निज के जीवन को देखता है। तब वह सोचता है—परिग्रह जड है, मैं चैतन्यमय हूँ। यदि मैंने जड के साथ मूर्छित भाव रखा तो में भी जड के साथ अपने जीवन को सकुचित करता हुआ पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति के रूप मे चला जाऊँगा।

शास्त्र की दृष्टि से स्वर्ग के देव भी, पानी वनस्पति मे जाकर पैदा हो जाते हैं। कहा तो देव का विराट जीवन। उसकी भौतिक ऋद्धि की तुलना मे मानव के पास क्या है ? कुछ भी नहीं। अगर कोई मानव अरबपति है तो भी देव की ऋद्धि के मुकाबले मे कुछ भी नही। देव की इतनी विराट भोगोपभोग की सामग्री है। देव भी उस सामग्री से चिपक जाते है और उनकी कामना रहती है—यह ऋद्धि नहीं छूटे तो अच्छा है। यदि गाढ मूर्छाभाव बन जाता है तो वह आत्मा एकेन्द्रिय आदि जाति मे पेदा हो सकती हे।

आप सुनते है कोई भाई परिवार के मुखिया कहलाते थे। लेकिन उनके लिए लोग ऐसा बोला करते हैं कि वे मर करके घर मे सर्प हो गये। इस प्रकार का उनका कथन सम्भव बन सकता हे क्योकि परिवार का मुखिया आखियर आयुष्य वध के समय मे मकानादि परिग्रह की मूर्छा के साथ सर्प आयुष्य के योग्य परिणाम वाला वन

जाता है तो मर कर उस घर मे सर्प रूप मे उत्पन्न हो सकता है व उसी हवेली के अन्दर सर्प बन कर चक्कर काटता है। जहा धन गडा है उस पर बैठ जाता है। कोई नजदीक जाता है तो फूकार मारता है। वह सर्प घर वालो को सताता नही पर उस स्थान पर बैठा रहता है। ऐसा आपने सुना होगा। यह क्यो हुआ ? कहा तो मनुष्य का जीवन और कहा सर्प का जीवन ? जड पदार्थो के साथ असक्ति भावना रखकर मनुष्यतन छूटा और सर्प बनना पडा। इन्सान इस मूर्छा भाव को पकडना चाहता है तो पकड लेता और छोडना चाहता है तो छोड भी देता है। एक पुरुष अपने हाथ मे एक थम्भा पकड कर जोर से चिल्लाता है कि–दौडो–दौडो, मुझे थम्भे ने पकड लिया है। समझदार पुरुष कहता है–जरा हाथो को ढीला करदे, थम्भा छूट जायेगा। वह कहे–मैं हाथ को ढीला न करू और थम्भा छूट जाय तब कहा से थम्भा छूटेगा ? थम्भे ने उसको पकडा है या स्वय उसने थम्भे को पकडा है ? आप स्वय सोच सकते है।

ऐसे ही परिग्रह ने मनुष्य को नही, पर मनुष्य ने परिग्रह को पकड रखा है। सन्त कहते है–भाई, इस परिग्रह को छोडने मे तत्पर हो जा। वह कहता है–क्या करू महाराज, यह छूट नही पाता। जिन्दगी भर उसे छोड नही पाता और जिस समय परलोक जाने के लिए प्रस्थान करता है उस समय भी वह मन से तो छोडना नही चाहता। लेकिन विवशता पूर्वक छोडकर जाना पडता है। आजकल मानव का मन–मस्तिष्क परिग्रह के साथ इस प्रकार चिपका हुआ है कि उसे भौतिक तत्त्वो के अतिरिक्त दूसरी चीज प्राय समझ मे नही आती है। ऐसा करके वह अपनी आध्यात्मिक शक्ति पर आवरण डाल रहा है। मै क्या बाते कहू ?

बडे–बडे छ खण्ड के अधिपति चक्रवर्ती, जिनकी सार्वभौम सत्ता थी, वे भी अपनी उस परिग्रह की स्थिति के साथ नही चिपके। सनत्कुमार जैसे चक्रवर्ती परिग्रह को नाक के श्लेष्म की तरह त्याग कर अलग हो गये। भरत चक्रवर्ती आकाश की तरह निर्लिप्त रहे। एक समय परिवार व भौतिक सत्ता–सपत्ति का त्याग करके वे सदा के लिए निस्पृह–निष्काम बन गये।

कोई भाई कहते हैं— महाराज आजकल परिग्रह बहुत बढा हुआ है।' अरे परिग्रह बढता है पर उसके साथ मन न चिपके तो परिग्रह का त्याग करते समय वह बिगाड भी कुछ नहीं सकता। यदि मनुष्य का मन परिग्रह के साथ चिपक जाता है तो थोडा सा परिग्रह भी नीचे गिरा देता है। कहा जाता है कि भरत चक्रवर्ती भगवान् ऋषभदेव के समवशरण मे बैठे हुए थे। उनकी सहज जिज्ञासा जागृत हुई। सोचा—सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु विराजे है। मैं जीवन के विषय मे निर्णय ले लू। भरत महाराज ने प्रश्न किया—भगवन् ! मैं कितने भव करके मोक्ष जाऊँगा ? भगवान् ने उत्तर दिया—भरत, तुम इसी जन्म मे मोक्ष प्राप्त करोगे तुम बन्धन रहित होकर विराट व्यापक, समभावी वीतराग बन जाओगे। भगवान् की वह अमोघवाणी भरत सुनने वाले थे और वहा उपस्थित जनता भी सुनने वाली थी। भरत महाराज प्रसन्न हुए कि मेरा निर्णय हो गया। अब मैं महान् बन जाऊँगा। वे चुप चाप बैठ गये। उसी सभा के बीच एक स्वर्णकार था। वह सोचने लगा—भरत सरीखे चक्रवर्ती को इसी जीवन मे मुक्त होने का सर्टिफिकेट मिल गया जिनके पास छ खण्ड का राज्य है जिनके परिग्रह का पार नही है। वे जब इसी जन्म मे मोक्ष जा सकते हैं तो मेरे पास तो एक समय का भोजन भी पूरा नही है। मुझे अब पूछने की कोई आवश्यकता नही। मै तो भरत महाराज से पहले ही मोक्ष चला जाऊँगा। ऐसा वह स्वर्णकार मन ही मन सोच रहा था। सोचते—सोचते ध्यान मे आया कि भरत महाराज ने निर्णय ले लिया जिससे दुनिया को मालूम हो गया कि भरत महाराज इसी जन्म मे मोक्ष जायगे। तो मै भी क्यो न पूछ लू। वह उमग लेकर खडा हुआ और भगवान् ऋषभदेव के चरणो मे प्रार्थना रखी—भगवन् मै कितने भव करके मोक्ष जाऊँगा ? भगवान वीतराग थे सर्वज्ञ थे, सर्वदर्शी थे, उन्होने समस्त उपलब्धियो को प्राप्त कर लिया था। उनके अन्तराय कर्म क्षय हो जाने से लाभ की दृष्टि से सब कुछ प्राप्त था। वे वीतराग भावना के साथ स्वर्णकार को उत्तर देते है—भाई तुम जल्दी मोक्ष नही जाओगे। तुम्हे अभी कई भवो तक ससार मे भटकना पडेगा।

यह भगवान का उत्तर था। लेकिन उत्तर कितना ही निर्मल

पवित्र भावना के साथ क्यो न दिया गया हो, प्रश्नकर्त्ता अपने विचारो के अनुरूप ही ग्रहण करता है।

आकाश से वर्षा भूतल पर निर्मल जल–बिन्दुओ के रूप मे गिरती है। खेत मे उगा पौधा स्वभाव के अनुसार उसे परिणत करता है। अफीम का पौधा अपने रूप मे और गन्ने का पौधा अपने रूप मे ग्रहण कर लेता है।

स्वर्णकार ने अपनी प्रकृति के अनुरूप ही भगवान का उत्तर ग्रहण किया। वह सोचने लगा कि भगवान भी माया से निलिप्त नही हैं। इनका भी मोह छूटा हुआ नही है। वीतराग भी धनवानो का पक्ष लेते है और गरीबो को कुछ नही समझते। जब इनके यहा भी पक्षपात हे तो यह समझना चाहिये कि पानी मे आग लगी है।

भगवान की स्थिति को वह समझ नही पाया। वह अपने स्वभाव के अनुरूप ही सोच रहा था। वह यह नही सोच पाया कि भगवान् को भरत से क्या मतलव। उन्होने अन्तर्ज्ञान मे जैसा देखा होगा वैसा ही कहा होगा। ऐसा सोचने की उसमे क्षमता नही थी। इसके विपरीत वह तो सोच रहा था भगवान् ने पक्षपात किया। उन्होने अपने वेटे को सर्टिफिकेट दे दिया और मैं स्वर्णकार हूँ इसलिए अनेक भव करने की वात कह दी। उसके मस्तिष्क मे अनेक तरह की कल्पनाए व्यक्त हो रही थी। वह उदास भाव से चुपचाप वैठ जाता हे। आगे प्रश्नोत्तर नहीं कर पाया।

उसकी गतिविधियो को भरत महाराज ने ताड लिया। भरत महाराज अपने स्थान पहुचे आर उस स्वर्णकार को बुलाया बुलाकर कहा–तुमने वीतराग प्रभु की वडी अवहेलना की है। तुमने प्रश्न पूछा, भगवान न उत्तर दिया। उस उत्तर पर तुमन प्रसन्नता व्यक्त नही की। यह वीतराग प्रभु की आसातना हे। म इसका दण्ड देने वाला हूँ। लकिन यह निष्परिग्रही महात्मा का प्रसग ह इसलिए एक शर्त के साथ दण्ड देना चाहता हू।

इतना कहकर उन्होन एक तल का लवालव भरा हुआ कटोरा मगाया आर उस स्वर्णकार को दिया। कहा–इस कटोर को लेकर नगर के समस्त रास्तो पर घूम कर आना ह। साथ म नगी तलवार

दकर सिपाहियो को लगा दिया। कहा–देखो ये सिपाही इसी प्रतीक्षा मे रहेगे कि एक बूद भी नीचे गिरी कि तुम्हारा सिर नीचे गिरा देगे। एक बूद भी न गिरी तो तुम्हे क्षमा कर दिया जाएगा। यह बात उस स्वर्णकार के सामने महाराज भरत ने रखी। सिपाहियो को रवानगी के समय कह दिया कि बूद तो क्या पूरा कटोरा गिर जाय तक भी कुछ मत करना।

वह स्वर्णकार सोचने लगा–मेरे प्राण इस कटोरे मे है। वह उसी भावना को लेकर चलने लगा। चक्रवर्ती महाराज ने आदेश दे दिया था कि जितने प्रदर्शन हैं उनको जगह–जगह बाजे गाजे के साथ चालू रखा जाय और खूब सजावट की जाय। वह भाई चलने लगा। उधर सिपाही कहते है–देखो, इधर क्या है ? उधर क्या है ? ये आवाज लगाते हैं पर उसके कान सुनने की तरफ नही जाते। बाहर के दृश्य भी सुन्दर है पर आखे कटोरे से हट नहीं रही है। सुगन्धित पदार्थ चारो ओर हैं पर वह सुगन्ध भी नही ले पा रहा है। वह उसी कटोरे मे एक ध्यान से तन्मय है। सारा शहर घूम कर पहुचा और कटोरे को हाथ से अलग रखा तब शान्ति की सास ली। वह सोचने लगा–अब मै बच गया।

भरत महाराज ने पूछा–क्यो भाई ! कुछ बूदे गिरी ? सिपाहियो ने कहा–नही महाराज एक भी बूद नही गिरी।

सोनी से पूछा–तुमने शहर मे क्या–क्या देखा ? क्या–क्या सुना ?

स्वर्णकार कहता है–महाराज मैने कुछ नही देखा कुछ नहीं सुना सिर्फ तेल के कटोरे पर ही मेरा ध्यान रहा। पाचो इन्द्रिया और मन तेल के कटोरे के साथ चिपके हुए थे। भरत महाराज ने सिपाहियो से कहा–तुमने सावधानी नही दिखाई। सिपाही बोले–महाराज हमने सारे रास्ते मे कहा–इधर देखो यहा नाच हो रहा है यहा गाना हो रहा है पर इसने ऊपर देखा तक नही।

भरत महाराज ने कहा–देखो भाई सारे ससार के विषय सबधी पदार्थ तुम्हारे सामने रहते हुए भी तुम्हारा ध्यान उनकी ओर नही रहा व कटोरे मे [illegible] वैसे ही इस जीवन मे तुम्हारी भावना

ससार के बीच रहती हुई भी इस शरीरादि के पिण्ड के साथ लगाव वाली है या इनसे ऊपर उठ कर निर्लिप्त है ? वह कुछ देर बोल नहीं सका। महाराज ने कहा–क्या सोचते हो ?

वह बोला–महाराज, मुझे क्षमा करिये। वैसे तो सग्रह की दृष्टि से मेरे पास फूटी कौडी भी नही है और न एक समय का पूरा भोजन ही है, फिर भी मै यह सोचता हूँ कि दुनिया भर की सम्पत्ति सत्ता, मुझे मिल जाय और दुनिया भर का परिग्रह मेरे पास रहे। भरत चक्रवर्ती खत्म हो जाय तो अच्छा, मे चक्रवर्ती बन जाऊ। इस प्रकार मेरी लालसा और तृष्णा की कोई सीमा नही है।

भरत महाराज ने कहा–भाई, तुम्हारी भावना इस परिग्रह के साथ चिपकी हुई है जिससे तुम्हारा जल्दी छुटकारा होने वाला नही है। मेरी दशा तुम्हारी दशा से विपरीत है। मे सोचता हूँ–यह परिग्रह जिसको जितनी आवश्यकता है उसके लिए काम आवे। मै इसका कम से कम उपयोग करू। मेरी आत्मा आकाश की तरह परिग्रह रहित बनकर सिद्ध स्वरूप का कब प्राप्त करे। यह मेरी भावना रहती है। मेरा जीवन व्यापक कैसे बने, इस परिग्रह से मुझे छुटकारा कैसे हो, यह भावना मेरे मन मे चलती है। ऋषभदेव भगवान ने मेरे साथ किसी प्रकार का पक्षपात नही किया, उन्होने अपने ज्ञान मे जैसा देखा वैसा प्रकाशित कर दिया। तुम्हे जो सर्टिफिकेट मिला वह इसलिए मिला कि तुम्हारे बीच मे परिग्रह की आसक्ति रूप चट्टाने आई हुई है, लगाव रहा हुआ है।

मै कुछ भाव आपके सामने रख गया हूँ सो सिर्फ आपको समझाने के लिए। आप समझते होगे, कल्पना भी करते होगे पर कल्पना ऊपर की ऊपर चलती है या अन्दर मे भी प्रवेश करती है ? महाराज के साथ बैठे है तब तक तो कुछ कल्पना का नक्शा होगा पर ज्यो ही यहा से उठे कि भावना से इधर–उधर लुढक जाते है।

आजकल के मानव समुदाय की दृष्टि से सोचा जाय तो अधिकाश भाइयो के मन मे सही स्थिति प्रवेश नही कर पाती।

मेरे कई भाई बोल उठते हैं–महाराज, आज के मनुष्य धर्म–कर्म छोडकर पैसे के पीछे चल रहे हैं। उनको आप जरा उपदेश दीजिये।

मै सोचता हूँ—क्या उपदेश दूं ? नन्दी सूत्र मे उपदेश के योग्य पात्र बताया है। सकेत दिया है, कि एक काली मिट्टी के समान उपदेश ग्रहण करने वाला पात्र होता है। जैसे काली मिट्टी प्राय सारे पानी को गल लेती है वैसे ही ऐसी प्रकृति का मनुष्य उपदेश ग्रहण करने के अधिक योग्य होता है। एक चट्टान के समान होता है। एक मूग शलिया पत्थर के समान होता है जिसमे पानी की एक भी बूद नहीं प्रवेश कर सकती है।

शास्त्रकारो ने रूपक दिया एक मुद्गशल पत्थर पडा था। एक बार नारद बाबा ने उसे हँसते हुए देखा। सोचा—यह हँसता क्यो है ? अगर पानी बरसे तो गल कर चला जावे। वह हँसने लगा—महाराज मुझ पर कोई असर होने वाला नहीं है। नारद ने उस बात को पकड लिया। पुष्करावर्त्त मेघ से नारद बाबा ने कहा—जोर से बरसो। वह बरसने लगा बडी—बडी चट्टाने गल—गल कर बहने लगी। सात दिन तक पानी बरसता रहा। सात दिन बाद नारदजी नजदीक जाकर देखते है कि वह मूगशलिया तो जैसा था वैसा ही पडा है। कहा—अरे भाई इतना पानी पडा और तू गल नही सका।

वह हँस पडा। बोला—मुझे कोई जीत नहीं सकता, गला नही सकता इतना पानी बरसा परन्तु मुझ पर पानी का क्या असर हुआ ?

यह तो रूपक है। मैं इस रूपक को आद्योपान्त विस्तार से नहीं रख रहा हूँ। पर आपके समझने के लिए रूपक का कुछ भाव बता रहा हूँ कि उस मूगशलिया पत्थर पर कोई असर नही हुआ। इसी तरह मूर्छारूप परिग्रह की स्थिति मूगशलिया पत्थर के समान बन गई है तो फिर उसके सामने कितनी ही उपदेश की झडी लगाई जाय तो भी कुछ असर होने वाला नही है। यह बात सर्व मनुष्यो के लिए लागू नही होती है। जैसे बडी—बडी चट्टान पिघल गई वैसे बडे—बडे परिग्रह वाले भी अन्तराय की स्थिति तोडने के लिए तत्पर हो जाते है।

[illegible] आपके सामने बैठे हुए सन्त पहले किस रूप मे थे ? क्या [illegible] परिग्रह नहीं था ? इनके पास भी परिग्रह था, कुटुम्ब [illegible] दौलत [illegible]। पर इन्होंने [illegible]

नही समझा और ये उनसे हटकर निष्परिग्रही रूप मे सन्त बन गये। अब ये परिग्रह से दूर रहकर साधना करते है। कही रहने को अच्छी जगह–आपका बगला मिल जाय तो भी क्या और कहीं झौंपडे मिले तो भी क्या ? खाने को अच्छा मिले तो भी वही बात, रूखा, सूखा मिले तब भी वही बात। और नही भी मिला तो भी समभाव मे रहने की स्थिति रहती है। हम जब छत्तीसगढ थे तब एक स्थान जगल मे रहने को मिला। वह स्थान उस जगल मे सडक ठीक करने वाले भाइयो ने डामर की खाली कोठियो पर घास आदि डालकर झौंपडी के समान बना रक्खा था। उसमे रहने का प्रसग भी आया। वहा से विहार करके होशगाबाद पहुचे। वहा पर मध्यप्रदेश के भूतपूर्व काग्रेस अध्यक्ष श्रीमूलचन्दजी देशलहरा आ गये। उन्होने कहा–महाराज, रात को कहा रहे ? हमने कहा–उस जगल मे रहे। वे बोले–महाराज, हम तो वहा दो मिनिट भी नही रह सकते। मैने कहा–आप नेता लोग हैं, आपको बगले, तकिए गादी से मोह है इसलिए वे चाहिये। हम तो साधु ठहरे। जो मिले उसी मे आनन्द मान कर रहते है। सन्त परिग्रह से ऊपर उठकर जीवन चलाते हैं। इसलिए सब जगह समभावी बन जाते है। उनके पास गरीब आवे तो क्या और धनवान आये तो क्या, सभी के साथ समभाव का बर्ताव है। सन्त अपने अन्तराय कर्म तोडने के लिए तत्पर रहते है और आगम अनुसार सन्त जीवन की मर्यादाओ मे रमते हुए सयम साधना की स्थिति मे तल्लीन हो जाते है तो एक समय ऐसा भी आ सकता है कि दान, लाभ, भोग, उपभोग आदि अन्तराय कर्म सम्बन्धी बन्धनो को तोडकर अनन्त शक्ति सम्पन्न बन जाते है।

स्थिति मे भी जो व्यक्ति अपने अन्तराय कर्म के क्षयोपशम भाव के साथ चारित्र सम्बन्धी वीर्य शक्ति को प्राप्त कर आत्मा को विशाल व्यापक बनाने मे अपरिग्रहव्रत का आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं क्या आपके मुह से उनके लिए धन्यवाद का शब्द नहीं निकलेगा ?

यहा चातुर्मास का प्रसग आया किस कारण से ? इन चादमलजी कुदार की दो पुत्रियो, अमर मुनिजी की भाणजियो के दीक्षा के प्रसग से। अमर मुनि स्वय अपनी पत्नी के साथ दीक्षित हुए। उनकी पुत्री चन्दनबाला ने भी दीक्षा ली। इनके पिता 68 वर्ष के अन्दर उस चट्टान को तोडकर दीक्षित बने । ये वैराग्यवती बहने अपनी तरुणाई के अन्दर चल रही है।। इसी तरुणाई की अवस्था मे अन्य कई बहने चाहती हैं कि सारे ससार के परिग्रह को हम बटोर ले और हम बडी सेठानी बन जाएँ। पर इन बहिनो को देखिये कि ये उन भावनाओ से मुक्त होने के लिए तत्पर हो रही हैं। आज जो बडे–बडे वीर कहलाने वाले इस प्रकार ममत्व की स्थिति नही त्याग सकते, जिसे ये बालाएँ त्याग करने को उद्यत हो रही हैं।

यह कब होता है ? जब चेतना मे विवेक की जागृति होती है तब यह चहल–पहल पैदा होती है। सन्तो की स्थिति देखिये। ये अपना कितना परिवार छोडकर निकले। ये वकील साहब कहते हैं–महाराज, आपने हमारे दिल (सयतमुनि) को ले लिया। मैं सोचता हूँ–दिल ले लिया तो फिर यह शरीर कहा चिपक गया ?

अरे बन्धुओ, सोचो, विचार करो। यह पिण्ड छोटा सा पिण्ड नहीं। मैं क्या तो वकील साहब से कहूँ और क्या दूसरो से कहूँ ? भाई यहा बैठे है पर ध्यान कहा है ? आज रविवार का दिन है तो सोच लिया–चलो महाराज के यहा चल दे। फिर सारा समय तो वहीं लेन–देन मे रहता है। कौन किस रास्ते मे है, इसको आप स्वय सोचिये। यह जीवन इस प्रकार जड तत्वो के साथ बर्बाद करने के लिए नही है। बुद्धिमत्ता तो इसमे है कि इस जीवन को व्यापक, विराट और विशाल बनावे।

मेरे भाई बोलते हैं–परिग्रहवाद ने विषमता पैदा कर दी। बडी बडी पार्टियो और उनके नेता भाषण करते हैं, आन्दोलन करते हैं, पर

मै सोचता हू–जो पार्टी या नेता वर्तमान की व्यवस्था लेकर चल रहे है उनके दिल दिमाग मे परिग्रह का वह भूत सवार नही है ? आप जरा तटस्थ दृष्टि से सोचिये। मै तो सोच पाया हूँ कि उनके दिल दिमाग परिग्रह से अत्यधिक चिपके हुए हैं, भले ही वह समानता का नारा लगाते हो। परिग्रह व्यक्ति के पास है तो भी है, पार्टी के पास है तो भी है, समाज के पास है तो भी है। उनका लगाव छूटा कहा ? विना लगाव की कौनसी पार्टी है जो परिग्रह के लक्ष्य को छोडकर चल रही है ?

यदि इन्सान अपना लक्ष्य अपरिग्रह भावना के साथ लगा कर चलता है तो फिर भी वह कुछ नक्शा बना, ऐसा कहा जा सकता है। पर यदि लक्ष्य सत्ता–सम्पत्ति का है तो वहा भी वही रोग का नक्शा रहा हुआ है भले ही वे 10 व्यक्ति हो या पचास व्यक्ति हो। वहा अपरिग्रहवाद की स्थिति पनप नही सकती। परिग्रह से मुक्त होने के लिए आत्मा के सही स्वरूप को समझ कर अपने जीवन को विराट व्यापक विशाल वनाना होगा। इस ससार के वैभव से, सत्ता, सम्पत्ति अधिकार से मूर्छा भाव हटाकर चलना होगा।

आज आपकी घडी कुछ आगे वढ गई। कोई वात नही। मैं चाहता तो था साढे दस पर समाप्त कर दू फिर भी वह कुछ आगे वढ ही गई। आप भी कुछ आगे वढने की चेष्टा करे। अव मैं लम्बी वात न कह कर आपको सकेत देना चाहूँगा कि आप इस छोटे से पिण्ड को महान् विशाल व्यापक और विराट बनावे। यह स्थिति कव वनेगी ? जव कि परिग्रह की वेडिया टूटेगी।

इसी शुभ भावना के साथ

दर्शनमोह

अभिनन्दन जिनदर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये, सहु थापे अहमेव।। 1 ।।
घाती डूगर आडा अति घणा, तुज दरिशन जगनाथ,
ढिठाई करी मारग सचरू, सेंगु कोई न साथ।।। 2 ।।

ये अभिनन्दन भगवान की प्रार्थना की कडिया हैं। ये कुछ दिनो से आपके सामने आ रही हैं और उनमे भी घाती डूगर की कडिया दो–तीन रोज से चल रही हैं। इनका चलना जितना आवश्यक नहीं है उतना अन्दर के जीवन को समझना आवश्यक है। कविता की कडिया तो शब्दरचना है। इस शब्दरचना से आत्मा के अन्दर कोई विशेष परिमार्जन नहीं हो सकता। आत्मा की शुद्धि के लिए यत्–किचित् निमित्त बन सकती है लेकिन शुद्धीकरण तो अन्तर की स्थिति को समझने और तदनुरूप आचरण करने से ही होगा। क्योकि आत्मा के साथ आठ कर्मो का उल्लेख शास्त्रीय दृष्टि से किया गया हैं। उन आठ कर्मो मे जो कर्म ज्ञान की अनन्त शक्ति को अच्छादित करता है, ढाकता है, उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहा गया है। आत्मा की समान्य ज्ञान दर्शन शक्ति को, जो ज्ञान की सहचर है, ढकने की शक्ति जिन कर्मवर्गणाओ मे है वह दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है जो साता और असाता रूप दशा का अनुभव कराने का माध्यम बनता है वह वेदनीय कर्म है। यह भी आत्मा की शक्ति पर एक दृष्टि से आवरण है। आगे नम्बर आया मोहनीय का। मोहनीय कर्म का तो कहना ही क्या ? सब

कर्मो की जड इसी से हरी–भरी रहती है, यह आत्मा के अपने निजरूप को भुलाता है और कर्त्तव्याकर्त्तव्य से मूढ करके चतुर्गति ससार मे परिभ्रमण कराने का श्रेय कहो या कुश्रेय, इसी मोहराज को है। आयुष्य कर्म इस शरीर की दशा को टिकाये रखने वाला है। शरीर, इन्द्रिय, गति, जाति आदि स्थितियो का निर्माण जिससे होता है वह नाम कर्म है। लोक मे प्रतिष्ठित अथवा अप्रतिष्ठित कुल मे जन्म होने का जो कारण बनता है वह गोत्र कर्म है। समस्त कार्यो मे बाधा उपस्थित होना, दान–लाभ–भोग–उपभोग वीर्य इन सबमे बाधक बनने वाला अन्तराय कर्म है।

इन आठ कर्मो से यह आत्मा बुरी तरह जकडा हुआ है। बहुत गाढ रूप से कसा हुआ है। इस स्थिति के बीच मे आत्मा की भावना जागृत हो भी कि मैं प्रभु के दर्शन को प्राप्त करके अपने जीवन मे परिपूर्णता लाऊ, तो वह इन कर्मो मे से चार बलवान् कर्मो को क्षय किये बिना परिपूर्ण केवलज्ञान की स्थिति प्राप्त नही कर सकता। आठ कर्मो मे से चार घनघाती कर्मो की छटनी करनी है। वे कौन से घन–धाती कर्म है। जो आत्मा को अधिक दबाने वाले हैं ? वे कर्म है–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय और मोह। इनमे भी मोह कर्म बडा बलवान् है।

मोहणिज्जपि दुविह, दसणे चरणे तहा
दसणे तिविह वुत्त, चरणे दुविह भवे।

–उ सू अ 33 गा 8

वह मोह कर्म भी दो प्रकार का है। भगवान् महावीर ने अन्तिम देशना के समय जो उद्घोषणा की उसमे ये दो भेद बताये गये है–एक दर्शनमोह और दूसरा चारित्रमोह। इस मोह कर्म ने किस प्रकार हाथ पैर फैलाये है इसका अनुमान करना है। दर्शनमोह दर्शनशक्ति को ढकता है अर्थात् आत्मा यदि कुछ प्रयास करके सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की ओर बढना चाहे, जीवाजीव आदि नव तत्व का विज्ञान प्राप्त करके बन्धनो से छुटकारा पाने का प्रयास करे तो उस प्रयास मे तथा तत्वादि के विश्वास पैदा होने मे बाधक बनने वाला दर्शनमोह है। दर्शनमोह से आत्मा का शुद्धीकरण परिमार्जन आदि

हीं होता है। आत्मा जीवादि पर विश्वास पूर्वक धर्म को ठीक नहीं समझता। वह अधर्म को धर्म समझता है, धर्म को अधर्म समझता है, आत्मा को अनात्मा और अनात्मा को आत्मा समझता है। साधु जीवन कितना पवित्र है जिसकी ससार को कितनी आवश्यकता है और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ महानुभाव प्रयास भी करते हैं फिर भी साधु को असाधु समझने और असाधु को साधु समझने का चेष्टा करने मे दर्शनमोह सहायक बनता है। यह बडी विडम्बना है।

इसके परिमार्जन के लिए बहुत कुछ प्रयास करने की आवश्यकता है। दर्शनमोह कर्म के बेकार होते ही, टूटते ही, अन्दर से छिन्न भिन्न होकर छँटनी होती है। जैसे कभी–कभी पहाड के अन्दर अमुक जाति का पत्थर है। उस पत्थर को कलाकार तोडता है और कई विभाग करके छटनी करता है। उस पत्थर की पालिश करते–करते ऐसी भी दशा बन जाती है कि वह दर्पण का काम करता है, कभी–कभी ऐनक मे काम देता है। यह ऐनक मे काच है वह किसका बना हुआ है ? पत्थर के चश्मे भी बनते हैं। तो वह पत्थर खदान मे था। उसे स्वच्छ किया तो वहीं नेत्रो के सामने आया। लेकिन उसने अधेरा नहीं किया, रोशनी भुलाई नहीं बल्कि नेत्र की रोशनी बढाने मे वह मददगार ही बना। बाधक नहीं साधक बना। जैसे बाह्य पदार्थों का परिमार्जन और सशोधन होने से पत्थर भी साधक बनता है उसी प्रकार दर्शनमोह के भी विभाग होते हैं। वह तीन अवस्थाओ मे विभक्त हो जाता है।

सूत्र –

सम्मत्त चेव मिच्छत्त, सम्मामिच्छत्तमेव य।
एयाओ तिन्नि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दसणे।

–उ सू 33 अ 9

उसके रूपान्तर हुए। तीन विभाग हुए–(1) सम्यक्त्व मोहनीय (2) मिथ्यात्व मोहनीय (3) मिश्र मोहनीय। आप बोलते हैं–इसमे समकित आ गई। महाराज इसे समकित दे दो। लेकिन समकित क्या और सम्यक्त्व क्या है ? सम्यक्त्व मोहनीय क्या है ? सम्यक्त्व, समकित और सम्यक्त्व मोहनीय, इस प्रकार शब्दो का प्रयोग तो होता

है पर इनका भेद भी समझाने की आवश्यकता है।

सबसे पहले सम्यक्त्वमोहनीय की स्थिति बनती है। समझना चाहिये कि अब यह सम्यक्त्व ग्रहण करने के योग्य बना है। सम्यक्त्वमोह का तात्पर्य क्या ? दर्शनमोह के तीन विभाग अभी बताए गए हैं। उनमे से प्रथम विभाग, जिसे सम्यक्त्वमोहनीय कहते है, वह है तो दर्शनमोह कर्म का भेद ही पर वह आत्मा की श्रद्धा पैदा होने मे बाधक नहीं बनता बल्कि आत्मा को कुछ दर्शन–स्वरूप नेत्र की रोशनी देता है। सम्यक्त्वमोह के दलिको का उदय होता है तो आत्मा क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करती है। कभी मनुष्य बोल देता है कि कर्मो के उदय की स्थिति आत्मा के लिए सदा बाधक है, यह आम आवाज है। प्राय कर बोलने की स्थिति मे यही आता है कि आत्मा कर्मो के उदय से ससार मे परिभ्रमण करता है, चक्कर खाता है। पर आपको ध्यान रखना चाहिये कि जैन दर्शन एकान्तवादी नही है, यह अनेकान्त दृष्टि को लेकर चलता है। कर्मो का उदय रुलाने वाला ही है, यह एकान्त धारणा किसी की है तो वह गलत है। कर्मो के उदय की अवस्था मे भी आत्मा जाग्रत होती है। अभी आप इस पोशाक मे बैठे हैं तो आपके कर्मो का उदय है या नही ? आयुष्य कर्म का उदय है तब इस शरीर को लेकर बैठे हैं। नाम कर्म का उदय है तो शारीरिक रचना के रूप मे अलग–अलग नाम है। गोत्र कर्म का उदय है तो आपके ऊँच–नीच गोत्र धारण करने की स्थिति है। सातावेदनीय का उदय है तो शान्ति से बैठे है। अगर सातावेदनीय का उदय नही होता तो क्या होता ? आसाता वेदनीय कर्म का उदय होता तो क्या आप व्याख्यान सुन सकते ? नही। असाता वेदनीय कर्म का उदय होता तो आप खाट पकडते। असाता–वेदनीय कर्म का उदय आने पर धर्मवृत्ति भी प्राय अच्छी नहीं लगती है। आज जो कुछ भी धर्मध्यान करने की स्थिति है वह साता वेदनीय कर्म के उदय का भी कारण है। अगर मनुष्य के नामकर्म के उदय की स्थिति सही रूप मे नही होती तो ये पाच इन्द्रिया तन्दुरुस्त नही होती। आयुष्य कर्म का उदय नही होता तो शास्त्र–श्रवण का सयोग नही मिलता। मनुष्यपन की भावना नही होती तो क्या आप आत्मतत्त्व को समझने की चेष्टा करते ?

आपको और आगे बढाऊ। यह उदय तो लगभग तीर्थंकरो के साथ भी चलता है। जो केवली हैं, सर्वज्ञ हो गये, उनके भी चार कर्मो का उदय चलता है। वहा भी चार कर्मों सम्बन्धी उदय भाव की स्थिति रही है। वहा नामकर्म का उदय है। यद्यपि तेरहवे गुणस्थान मे रहने वाली आत्मा कृत–कृत्य हो गई। अब आत्म–साधना की दृष्टि से क्रिया करने की आवश्यकता नहीं रही। उनका विचरण, परिभ्रमण, बोलना, उठना बैठना, ये सारी क्रियाएँ जन–कल्याण की शुभ भावना से होती हैं। उनको अपने आत्म–कल्याण के उपदेश देने की आश्यकता नहीं रही। उनसे नीचे दरजे वाले साधक सन्तवृन्द हैं। वे उपदेश देते हैं तो जनता के हित के लिए ही देते हैं ऐसा एकान्त नियम नहीं है। वे स्वर–हित की दृष्टि से उपदेश करते हैं। स्वय की आत्म–शुद्धि के लिए भी उपदेश देते हैं। आप सोचते होगे कि महाराज ये बातें हमको ही सुना रहे हैं। लेकिन आपको ही सुना रहा हूँ ऐसा ही न समझे। मैं अपनी आत्मा को भी सुना रहा हूँ आपके माध्यम से। यदि मेरा विवेक ठीक तरह से है और किसी प्रकार का प्रलोभन अन्दर मे नहीं, आसक्ति भावना नहीं तो वीतराग–वाणी के अनुसार श्रवण करने वाला निश्चय रूप से निर्जरा करता है। यानि आत्मा पर लगी हुई कर्म रूपी मलीनता को वह कुछ हिस्से मे साफ करता है। शास्त्रीय परिभाषा की दृष्टि से कर्मो का देश से आत्मा से हटना निर्जरा है। श्रोताओ की निर्जरा होती भी है और नहीं भी होती है। उसमे भजना है। इधर वक्ता मे निर्जरा की नियमा है। तो जब तक साधक केवली नहीं बनता है तब तक नाम कर्म के उदय के अन्तर पेटे मे वचनयोग है, यह उदय की अवस्था है। केवली बन जाने के बाद कृत–कृत्य हो गये, सर्वज्ञ बन गये। उनके भी वचन का प्रयोग होता है। वहा नाम कर्म का उदय है, वह जन–कल्याण के लिए होता है।

मैं मोहकर्म की बात कह रहा था कि उस दर्शनमोह के टुकडे होते हैं तो तीन सज्ञाए बन जाती हैं। उनमे से दर्शनमोह कर्म के जो स्वच्छ परमाणु हैं उनके उदय होने पर आत्मा को क्षयोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। अवशेष दो सज्ञाओ मे से एक मिथ्यात्व और दूसरी मिश्र मोहनीय सज्ञा बनती है।

सम्यक्त्व मोह काच के समान है, ऐसी उपमा दी जा सकती है। जैसे अलमारी मे पुस्तके पडी है और अलमारी पर काच का कपाट लगा है तो उस अलमारी मे कितनी पुस्तके है, यह देखा जा सकता है पर पुस्तको को सीधा पकडा नही जा सकता। यदि लकडी के कपाट मे पुस्तके पडी है तो उन्हे देख भी नही पायेगे। वैसे ही दर्शनमोह का भेद जो सम्यक्त्व मोहनीय है उसे काच के समान समझना चाहिये। इसके उदय से जीव नौ तत्त्वादि की श्रद्धा को शुद्ध आत्म–प्रदेशो से ग्रहण नही कर पाता फिर भी सम्यक्श्रद्धा की दृष्टि से जागृति करने वाला सम्यक्त्वमोहनीय बनता है। वह सम्यक्त्वमोहनीय कर्म सम्यग्–दर्शन मे बाधक नही बनता है। और सम्यक्त्वमोहनीय का उदय रहने पर मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का बन्धन नही होता। इसकी उपस्थिति मे सकाम निर्जरा हो सकती है। यह बाधक नही बनता।

मिथ्यात्वमोहनीय के उदय मे मिथ्यात्व मोहकर्म का बध भी होता है। मैं बतला रहा था कि आप यदि भगवान् के दर्शन करना चाहते हैं तो कर्मों मे जो बलवान कर्म हैं, जैसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय, इनको कमजोर करने के लिए बहुत कुछ प्रयास करने की आवश्यकता है। जिस रोज से घाती कर्म कमजोर बन जायेगे और मुख्य तौर पर मोह कर्म कमजोर बन जायगा तो तीनो घाती कर्म ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अतराय स्वत कमजोर हो जायेगे। तभी आप भगवान् के दर्शन करने के पात्र बनेगे। मोह कर्म सबसे बडा प्रबल सेनापति है। जैसे सेनापति के हताश हो जाने के बाद सेना मे जान नही रहती वैसे ही मोह कर्म के कमजोर हो जाने के बाद शेष कर्म भी ढीले पड जाते हैं। यदि मोह कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है तो तीनो कर्मो का भी क्षय हो जाता है। इन चारो घन–घाती कर्मो के क्षय होते ही केवल ज्ञान की दशा प्राप्त हो जाती है। उपरोक्त विवेचन से आप लोगो को भी शुद्ध श्रद्धा की स्थिति को सामने रखते हुए मिथ्यात्व मोह सम्बन्धी प्रकृतियो का क्षय क्षयोपशम या उपशम करने की भावना करनी चाहिये। वह भावना सफलीभूत कब बन पायेगी ? जब कि आपकी आन्तरिक भावना बाह्य जड पदार्थो के प्रति अत्यधिक आसक्ति के रूप मे नही रहेगी। यद्यपि जड

पदार्थों के प्रति अत्यधिक आसक्ति की भावना प्राय ससार के प्राणियो मे पाई जाती है। सिर्फ मनुष्यो मे ही नही बल्कि पशु , पक्षी नरक, स्वर्ग आदि के प्राणियो मे भी न्यूनाधिक रूप मे पाई जाती है। उनमे से जिन प्राणियो के क्षय क्षयोपशम या उपशम होता है वे सम्यक्त्वधारी कहलाते हैं। यदि क्षय, क्षयोपशम या उपशम इन तीनो अवस्थाओ मे से किसी का भी प्रसग आत्मा के साथ नहीं रहा तो मिथ्यात्वमोहनीय के उदय के साथ अनन्तानुबन्धी का उदय रहेगा। इसका उदय होने पर समकित नहीं पाती।

सम्यक्त्वमोहनीय के उदय की स्थिति मे जीव अनेक पूर्व जन्मो के पापो पर रोक लगाकर जीवन की उच्च स्थिति कायम करता है और सुदेव सुगुरु सुधर्म की भावना रखता है। यह भावना जिस किसी मे रहती है उसके आत्मविकास के आगे के कार्यो का प्रारम्भ होता है।

मूल टूटता है तो वृक्ष के सूखने का प्रसग आता है। मूल नहीं सूखता है और ऊपर से काट लिया जाता है, जड मजबूत है तो वह फिर से हरा–भरा हो सकता है रिझके की तरह। रिझका आप जानते हैं ? शहर के भाई रिझके नाम से नहीं भी जानते हो पर गाव के भाइयो को अनुभव है कि यह एक तरह का घास होता है जो बैलो को खिलाने के लिए पैदा किया जाता है। उसे एक बार बो देते है। वह अपनी जडे जमा लेता है। किसान ऊपर से काटते हैं, वह फिर बढ आता है। ऊपर–ऊपर से काटते जाने के बाद भी वह नष्ट नहीं होता क्योकि जडे जमी है। अगर जडो को उखाड दिया तो वह फिर नहीं बढ सकता।

वैसे ही मोहकर्म रिझका है। इसकी जडे जमी हैं और आपने ऊपर–ऊपर से काट भी लिया, कतरन कर दी लेकिन अन्दर की जडो को नहीं उखाडा तो कभी न कभी यह फिर फलने लग जायगा।

शास्त्र मे वर्णन आया कि चौथे गुणस्थान पर आत्मा आरोहण करता है और वहा से यथासम्भव विकास करता हुआ ग्यारहवे गुणस्थान तक चला जाता है। लेकिन ग्यारहवे गुणस्थान से पलटा खाकर नीचे गिरती है और यदि सभलने का अवसर नहीं आता है तो

कभी–कभी मिथ्यात्व तक मे चला जाता है। कई आत्माए क्षयोपशम सम्यक्त्व रखने पर भी नरक तक भी जा सकती है। ऐसा प्रसग क्यो आता है ? इसलिए कि उस जड को उखाडा नही और ऊपर–ऊपर से ही कतरन की है। भगवान् ने कहा–सद्धा परमदुल्ला। भगवान् ने श्रद्धा को दुर्लभ बताया। चारित्र को दुर्लभ नही बताया, केवल ज्ञान को दुर्लभ नही बताया, सिद्ध भगवान की स्थिति को दुर्लभ नहीं बताया पर श्रद्धा को दुर्लभ बताया। अगर श्रद्धा मजबूत है तो चारित्र अवश्य आयेगा। चरित्र आयेगा तो केवलज्ञान अवश्य होगा, जिसे केवलज्ञान आयेगा वह आत्मा सिद्ध अवस्था अवश्य प्राप्त करेगा। यद्यपि सिद्ध अवस्था आखिरी है तथापि दुर्लभ न बताकर श्रद्धा को दुर्लभ बताया, इसके पहले एक बात और बताई–

माणुसत्त सुई सद्धा, सजमम्मि य वीरिय।

–उ०सू०अ० 3 गा० 1

पहले मनुष्य–पन अर्थात् मनुष्यता आनी चाहिये। यह अति दुर्लभ है। उसके बाद शास्त्रो का श्रवण, फिर श्रद्धा और फिर सयम मे पराक्रम। ये चार बाते मनुष्य शरीर द्वारा ही प्राप्त होती है। अत मनुष्य शरीर की दृष्टि से मनुष्यत्व की दुर्लभता बताने से नाम कर्म के उदयभाव की स्थिति का भी सकेत आ गया है।

उदय भाव का तन दुर्लभ इसलिए बताया कि इसके धरातल पर वह श्रद्धा है। इसी के धरातल पर आत्मा का चारित्र, केवल ज्ञान ओर सिद्ध अवस्था प्राप्त की जा सकती है। क्योकि सम्यक्त्व से लेकर के केवल ज्ञान की अवस्था प्राप्त करने मे शरीर माध्यम बनता है। उस प्रकार शरीर के बिना केवल ज्ञान कभी पैदा नही हो सकता। आप इस विज्ञान की स्थिति को मस्तिष्क मे लेकर ध्यान से चिन्तन करे कि हम इस तन का सदुपयोग कर रहे है या दुरुपयोग ? मान लीजिये किसी सिद्ध पुरुप की कृपा दृष्टि से एक व्यक्ति को चिन्तामणि रत्न मिल गया। उस रत्न का उपयोग किसी तरह से किया जायेगा ? वह क्या चूर्ण चटनी वाटने के काम मे लिया जाय ? यदि इस रत्न को एक पुरुप नमक मिर्च मसाले वाटने के पत्थर के वदले मे घिसता है तो आप उसे क्या कहेगे ? वुद्धिमान कहेगे ? चतुर कहेगे ? नहीं।

आप उस सर्टिफिकेट दे देगे कि इसमे जरा भी अकल नही है। सिद्ध पुरुष ने महान कृपाकर इस चिन्तामणि रत्न को दिया। उससे यह नमक मिर्च मसाला बटता है तो इससे बढकर और बुद्धि का दीवाला क्या होगा ? आपको ऐसा सर्टिफिकेट देना ही चाहिये। आप मे जजमेन्ट करने की शक्ति तो है।

पर थोडा अपने अन्दर मे भी चिन्तन कर लीजिये कि कही कोई ऐसा कार्य हमसे तो नही हो रहा है ? यह मनुष्य जीवन चिन्तामणि रत्न के समान मिला है। उसे आप कहा लगा रहे हैं ? क्या इस महत्वपूर्ण रत्न को आप नमक मिर्च पीसने मे नहीं लगा रहे हो ? बाहर से तो नहीं पर अन्दर से तो लगा रहे हो। नमक का स्वभाव क्या ? वह खारा होता है। और मिर्च ? वह चरकी होती है। तो आपको देखना चाहिये कि मेरा जीवन दूसरो के लिए खारापन तो पैदा नहीं कर रहा है ? यह ख्याल इन्सान को करना है।

जिस अमूल्य जीवन से मजिल तैयार करना है, केवल ज्ञान प्राप्त करना है, उस जीवन का कहीं दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है ? आज मानव अहकार के साथ कहता है कि मैं श्रद्धावान हू, मैं धर्मी हूँ, भगवान का भक्त हूँ, प्रभु की आज्ञा मे चलने वाला हूँ, पर उसी के अन्दर के जीवन को देखा जाय तो वह नमक मिर्च बाटने के समान जीवन का अधिकतर प्रयोग कर रहा है। ऐसा कहना क्या अत्युक्ति है ? मैं आपको ही क्या, अपनी आत्मा को भी सुनाऊ ? कई दफा सुनाता भी हू कभी-कभी वाणी लगती भी है। मेरे भाई कहते हैं, महाराज, अमुक समय आते हैं तो आपके दर्शन नहीं होते। मैं क्या दर्शन दू ? मैं स्वय दर्शन की अभिलाषा रखने वाला हू तो आपको क्या दर्शन दू ? यह तो आप लोगो ने थोडा कुछ मान लिया है पर पहले मुझे दर्शन करने दीजिये। आप भी इस मार्ग पर चलेगे तो आप स्वय दर्शन पर स्थिर हो जाएँगे। आपका यह प्रेम धार्मिक स्नेह के रूप मे लेता हूँ। आप सन्त जीवन के दर्शन करना चाहे तो सुदेव, सुगुरु सुधर्म के दर्शन करते हुए दर्शन मोहनीय कर्म की जड को उखाड कर फैंक दीजिए और शहद व मिश्री की तरह जीवन की कोशिश करे तो नक्शा बदल जाएगा और जीवन का आनन्द सम्यक् श्रद्धा के साथ प्राप्त कर

सकेगे।

बन्धुओ । जिस आत्मा ने सम्यक्त्व रूप रत्न को प्राप्त किया और मनुष्यतन की दुर्लभता का नक्शा जिसके सामने आ गया, उसका वह नक्शा गृहस्थाश्रम की दशा मे भी किस ढग का होता है, यह थोडा कथा भाग से भी समझना आवश्यक है।

महारानी पुष्पदन्ती जब श्रेष्ठ स्वप्न के साथ गर्भवती हुई तो गर्भ की अवस्था मे उसने अपने जीवन को किस ढग से रखने की प्रतिज्ञा की ? कितने नियम उपनियम जीवन की मर्यादाओ के साथ करती है ? इसका मैं कुछ जिक्र कर गया हू । महारानी शान्ति के साथ चल रही है। उसने उन्ही प्रतिज्ञाओ के साथ गर्भ का पालन किया। वह सोच रही थी कि सन्तान का जीवन उज्ज्वल बने। प्रसव समय के आने पर उसकी कुक्षि से एक पुत्रीरत्न का जन्म हुआ। माता ने देखा तो वह बडी प्रसन्न हुई माता के मन मे पुत्र–पुत्री का भेद नहीं था। उसके मस्तिष्क मे विषमता नही थी। क्योकि समदृष्टि आत्मा किसी पर रागद्वेष नही करता। वह समय पर जो उपलब्ध होता है उसी मे आनन्द का अनुभव करता है। पुत्री जन्म पर दुखित होना और पुत्र जन्म का आनन्द मनाना यह किनका कार्य है ? आप चुप है । सोचते हैं–महाराज, आप तो फरमाते जाइये हिसाब मत पूछिये। आप चुप हैं। मैं तो कहता जा रहा हू पर दोनो नक्शो को रख दूगा तो तुलनात्मक दृष्टि से आपको चिन्तन करने का प्रसग आयेगा। आज के मेरे अधिकाश भाई बहन पुत्र जन्म पर आनन्द से विभोर होकर नाचने लग जाते है। और कदाचित् गुणवती कन्या का भी जन्म हो गया तो उनका चेहरा उतर जाता है, वे उदास हो जाते है और सोचते हैं–यह कहा से आ गई ?

स्वर्गीय आचार्य श्री जी महाराज साहब फरमाया करते थे कि एक छोटी सी बच्ची मा के साथ दर्शन करने आई। आचार्य श्री जी कभी–कभी पूछ लिया करते थे–बाई, तुम्हारा नाम क्या है ? बच्ची ने कहा–मेरा नाम अणचाई । आचार्य श्री जी महाराज जरा मुस्कराए तो मा ने स्पष्टीकरण किया–महाराज, मेरे छ छोकरिया हो गई। अब मैं और मेरे परिवार वाले छोकरी नहीं चाहते फिर भी यह राड जन्म गई

इसलिए इसका नाम अणचाई (अनचाही) रख दिया। यह विषम दृष्टि है या सम दृष्टि ?

अरे सम्यक् दृष्टि का फतवा लेने वाले मेरे भाइयो ! जरा सोचो ! यह तो एक सयोग है कि बच्चा या बच्ची हो जाय, पर आप क्यो रागद्वेष की प्रवृत्ति बढाने मे तत्पर होते हो ?

इस रागद्वेष का कारण यह है कि आपने अपना जीवन बेढगा बना रखा है, विषम जीवन बना रखा है। सामाजिक क्षेत्र मे भी इस प्रकार की विषमता एव कुरीतिरिवाज पैदा कर रखे हैं कि द्वेष का प्रसग आता है। दहेज प्रथा के भूत ने यह भावना और अधिक बलवती कर दी। यह मलीन वृत्ति पैसे के पीछे पैदा हुई। पैसे को ही जो मान्यता देता है क्या वह सम्यग्दृष्टि है ? नहीं।

मैं कहूँगा–आप अपने जीवन को स्थिर करिये। मैं यह तो नही कहता हू कि आप सब पैसो के बिना विचारे त्याग कर दे। हा, साधु बनना है तो त्याग करना ही होगा, पर गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी पैसे को सर पर लादे मत फिरिए। इसको सिर पर लेकर चलने के कारण ही विषमता बढी हुई है। दूसरा दृष्टिकोण है मिथ्यात्व। मिथ्यात्व के कारण भी विषमता बढी हुई है। जिस रोज यह विषमता समाप्त होगी उस रोज समझना चाहिये कि जीवन मे कुछ सम्यग् दृष्टि पाने का नक्शा आया है।

महारानी की दर्शनमोह की गाठ टूट चुकी थी। इसलिए जब उसने पुत्री को देखा तो आनन्दित हुई। फिर उस आनन्द मे चार चाद और लग गये जब कि उस पुत्रीरत्न के आकृति–चिह्म आदि देखे। जन्मने के पश्चात् कुछ आटा वगैरह बनाकर, फेरकर अवयवो को ठीक करते है। कन्या के मस्तिष्क पर एक तिलक देखा जो भव्य रूप से शोभा दे रहा था। जिसने भी देखा सभी को प्रसन्नता हुई। परिवार वालो ने देखा कि यह विचित्र ढग का तिलक है। उसे देखने के लिए नर–नारियो का ताता लग गया। आजकल भी कोई अनोखी चीज आती है तो देखने के लिए ताता लग जाता है।

कन्या के जन्म के प्रसग से एव राजघराना होने से नामकरण के लिए कई विद्वान ज्योतिषियो को बुलाया गया। पर माता ने

कहा–मुझे बाहर के काल्पनिक नामो पर विश्वास नही है। मैं गुण–नाम पर विश्वास करती हूँ। मुझे हाथी का स्वप्न आया। उसने दावानल से घबराकर राजभवन मे विश्रान्ति पाई। मै उसी आधार पर इस कन्या का नाम रखना चाहती हूँ–दवदन्ती। आग से घबराकर हाथी आया इसलिए इसका नाम भी उस भावना के आधार पर दवदन्ती रखा जावे। दव कहते है आग को और दन्ती यानि हाथी।

'दवदन्ती' नाम दे देने के बाद यह कन्या बढने लगी तो महाराज के राज्य मे भडार मे, परिवार मे अच्छे कार्यो मे वृद्धि हुई। पुण्यवान आत्मा जिस घर मे जन्म लेता है उस घर की शोभा बढ जाती है। दवदन्ती के कारण घर की अपूर्व शोभा बढी। जो घर एक किनारे छिपा होता है, जिसका किसी को कोई पता भी नही होता, ऐसे घर मे पुण्यवान आत्मा का जन्म हो जाय तो वह घर सूर्य के समान चमकने लग जाता है। यह पुत्रीरत्न जब से महाराज भीम नरेश के घर मे आयी तब से सब तरह की वृद्धि देखकर इसे प्यार से परिजन दमयन्ती के नाम से पुकारने लगे।

उसे 64 कलाए सिखाई गई। बाहरी कलाओ के साथ ही साथ धार्मिक कला का ज्ञान भी सिखाया। अन्दर के जीवन को पवित्र बनाने की कला बचपन से ही दी गई। माता स्वय सुसस्कारो से ओतप्रोत तो थी ही, उसने धार्मिक सस्कार देने मे किसी प्रकार कसर नही रखी। उसने धार्मिक कला के साथ ही साथ 64 कलाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया। वह रूप लावणय से भी बहुत उत्तम थी। फिर भी उसमे अभिमान की मात्रा नही सी थी। उसने यह नही सोचा कि मैं राजघराने की राजकन्या हूँ। मेरे अधीन नौकर–चाकर दास, दासी हैं। अत मैं इनके साथ अभिमानपूर्वक चलू। पर वह सबके साथ प्रेमपूर्वक इस ढग का व्यवहार करती जैसे कोई घर के सदस्यो से करती हो, वह सबको प्रिय लगने लगी। सब कहने लगे–यह तो देवी है, न मालूम कहा से अवतार लिया है। बचपन मे मा–बाप ने धर्म के सस्कार उसे दिये तो योग्य वय मे उसने धर्मशास्त्रो का विशेष अध्ययन भी किया। वह नव तत्व स्याद्वाद का सिद्धान्त, नय, निक्षेप आदि–आदि बातो को भलीभाति समझ लेती थी। कुवारी अवस्था मे ही जैन धर्म के

सिद्धान्तो को वह स्पष्ट रूप से समझ चुकी थी। उसने जब देखा कि मेरे पिता की वृत्ति धर्म की ओर मन्द है तो वह अपने पिता समझाकर धर्म की ओर लगाती है। उसने पिता के जीवन मे भी परिवर्तन कर दिया। पिता को ही नहीं बल्कि कई लोगो को उसने धर्म मे दृढ बनाया। उस कन्या का जीवन कितना महत्वपूर्ण था ।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि मुझ मे श्रद्धा है या नहीं इसकी क्या पहचान है ? कोई कहता है—महाराज ! मैं भव्य हूँ या अभव्य ? इसका शास्त्रीय दृष्टि से तो लम्बा चौडा उत्तर है। मैं उसकी सार बात बता देना चाहता हूँ। सम्यक्त्व के पाच लक्षण पहले ख्याल मे लीजिए। वे हैं—सम, सवेग, निर्वेद अनुकम्पा व आस्था। ये पाच बाते उसमे हैं या नही ? दूसरी बात ससार के विषय, पाच इन्द्रियो के विषय, और ससार के प्रपच अन्तर आत्मा को कैसे लगते हैं ? ससार के पदार्थों के प्रति आसक्ति भावना है उदासीन भावना है तो समझना चाहिये कि कुछ श्रद्धा का स्वरूप स्वय मे है और भव्य भी है। और यदि अत्यासक्ति की भावना है तो समझना चाहिये कि वे चट्टाने अभी बनी हुई हैं जिन्हे मैं तोड नहीं पा रहा हूँ। आपको इस प्रकार का नक्शा लेकर जीवन को बदलना चाहिये।

महात्मा के मुँह से नल आदि परिषद् इस वृत्तान्त को सुन पा रहे थे। वे महात्मा विशिष्ट ज्ञानी थे। नल की जिज्ञासा अन्तिम स्थिति के छोर पर आने लगी। पर नल के मन मे जिज्ञासा थी कि दमयन्ती ने जो यह प्रकाश प्राप्त किया वह कैसे किया ?

महाराज कहने लगे—नल ! यह दमयन्ती तुम्हारी एक जन्म की साथिन नहीं है, कई जन्मो से साथ रहती आई है। इसने धर्म की साधना की हैं इस बाला के सिर पर जन्मते ही तिलक था। वह उसकी आन्तरिक शक्ति को व्यक्त करने वाला था। इतने समय तक लोगो को इसका पता नहीं था। इसके तपोबल से धार्मिक शुद्ध श्रद्धा से वह रोशनी आई। वह रोशनी किसी बाहरी पदार्थ की नहीं थी, उसके आन्तरिक जीवन की पूर्व जन्म की उपलब्धियो का फल था।

शास्त्र मे 28 प्रकार की लब्धियो का वर्णन है। उनमे से एक इस प्रकार की भी होती हे कि सकल्प—पूर्वक आन्तरिक शक्ति के

माध्यम से बाहर के पदार्थो को देखा जा सकता है। इसके पास वैसी शक्ति थी।

ये शक्तिया आधुनिक युग मे भी रूपान्तरित अवस्था मे किसी–किसी आत्मा मे व्यक्त हो सकती है। पूर्व मे कुछ ऐसी घटनाए हुई और आज भी कुछ ऐसी घटनाएँ हो सकती है। मैं अभी उनका जिक्र करना उचित नही समझता क्योकि व्याख्यान का समय पूरा हो गया है।

वे महात्मा नल आदि परिषद के सामने उपदेश दे रहे थे। तब नल ने समझा कि यह दमयन्ती महान् पुणयात्मा है। मेरा भाग्य अत्यन्त प्रबल है कि मेरा इसके साथ सम्बन्ध हुआ। अब मै इससे क्षमा माग कर शुद्धि करू।

नल महात्मा के चरणो मे गिरकर वन्दन नमस्कार करता है। सारी परिषद् भी वन्दन नमस्कार करती है।

शुद्ध श्रद्धा का बीज मिथ्यात्वमोह के पत्थर के हटने पर अन्तर मे जागृति करा सकता है। मै प्रार्थना की कडियो मे कह गया हूँ कि चार घाती कर्म ही जबरदस्त डूगरियाँ हैं। उनमे से मोह कर्म सबसे बडा सरदार है। मोह कर्म के भी दो भेद हैं। एक दर्शनमोह और दूसरा चारित्रमोह। आगे चलकर दर्शनमोह के तीन भेद किये जो आपके सामने रख दिये गये है। आगे की स्थिति कैसे क्या बनती है, वह भावी के गर्भ मे रहने दीजिये। अभी मैं इतना ही सकेत देता हूँ कि आप इस मोह रूपी सरदार को मूल से नष्ट करने की कोशिश करेगे तो आपका जीवन मगलमय बनेगा।

इसी शुभ भावना के साथ

चारित्रमोह

अभिनन्दन जिनदर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये, सहु थापे अहमेव ।। 1।।
घाती डूगर आडा अति घणा, तुज दरिशन जगनाथ,
ढिठाई करी मारग सचरू, सेंगु कोई न साथ ।। 2।।

ये अभिनन्दन भगवान की प्रार्थना की कडिया हैं। इन कडियो मे आत्मा के ऊपर आये हुए घाती–डूगर का जिक्र किया गया है। आत्मा अपने आपमे श्रेष्ठतम तत्त्व है। इस सृष्टि मे जितने भी पदार्थ हैं उन सब मे यदि सारवान कोई तत्त्व है तो वह आत्मा है। लेकिन इस आत्मा के ऊपर बहुत बडे आच्छादन हैं, ढक्कन हैं। जितनी भी दुनियॉ मे सार चीजे हैं उनमे मिलावट हुए बिना नहीं रहती। अच्छे घी मे डालडा मिलेगा। सोने चादी जवाहरात आदि अच्छी चीजे हैं। उनमे भी मिलावट अवश्य होती है और मिलावट के साथ व्यापार का नक्शा रहा हुआ है। जिस पदार्थ को स्वय काम मे लेना होता है उसमे कदाचित् मिलावट न होगी। उसे अलग रख लेगे पर व्यापार मे ऐसी बात प्राय कम मिलेगी।

वैसे ही एक प्रकार से व्यापार करने वाला सासारिक आत्मा है। उसका भी एक व्यापार है। वह व्यापार बाहरी पदार्थो के लेन–देन का नही पर अन्दर के विचारो के आदान–प्रदान के रूप मे है। आत्मा स्वय सोचने मे समर्थ है। वह हिताहित को भली–भाति पहिचानने की क्षमता रखता है। पर उस क्षमता के पीछे मलीन आवरण का प्रसग आ

जाता है तो फिर वह न प्रभु के दर्शन ही कर पाता है, न स्वय के दर्शन ही कर पाता है और न हिताहित की स्थिति को भी भली भाति सोच पाता है।

दर्शन की स्थिति के साथ यहा चैतन्ययुक्त शरीरपिण्ड का उल्लेख समझना चाहिये और साथ ही साथ चार घाती कर्मो का वर्णन है। यद्यपि इन कडियो मे कर्म का नाम नही है तथापित उनको यहा डूगर के नाम से कवि ने लिया है। एक–एक का विषय बडा जबरदस्त है। इन विषयो के साथ आत्मा का सम्बन्ध अनादिकाल से लगा हुआ है। जिसमे मोहकर्म की प्रकृतियो का विषय आपके सामने आ रहा है। कल मैने दर्शनमोह के विषय मे कुछ कहा कि दर्शनमोह की स्थिति आत्मा के शुद्ध श्रद्धान को विचलित करती है। लेकिन चारित्रमोह का भी कुछ सम्बन्ध इसके साथ है। चारित्रमोह की प्रकृतिया इस प्रकार की बताई गई है–

चरित्त मोहण कम्म, दुविह त वियाहिय।
कसायमोहणिज्ज तु नोकसाय तहेब य।।

–उ सू अ 33 गा 10

सोलसबिहभेएण कम्म तु कसायज।
सत्तविह नवविह वा, कम्म च नोकसायज।

–उ सू अ 33 गा 11

कषायमोहनीय और नोकषाय मोहनीय, ये चारित्रमोह कर्म के मूल दो भेद हैं। कषाय शव्द से आप परिचित हैं ? इन्हे आप क्रोध मान माया और लोभ शब्दो से कहते है। इसके सोलह भेद बताये गये हें। नोकषाय मोहनीय के सात या नौ भेद समझने चाहिये। क्योकि नोकपाय मोहनीय के अपेक्षादृष्टि से सात अथवा नो भेद हैं। इस तरह का शास्त्र मे उल्लेख किया गया है।

कपायमोहनीय की दृष्टि से सोलह भेद जो वनते हैं, उनमे विशेपण लगता हे। अनन्तानुवन्धी क्रोध, अनन्तानुवन्धी मान, अनन्तानुवन्धी माया अनन्तानुवन्दी लोभ अप्रत्यख्यान क्रोध अप्रत्यख्यान मान अप्रत्याख्यानमाया ओर अप्रत्याख्यान लोभ। प्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यान मान, प्रत्याख्यान माया, ओर प्रत्याख्यान लोभ। सज्वलन

ज्वक्रोध, सज्वलन मान, सज्वलन माया और सज्वलन लोभ, इस प्रकार सोलह भेद हैं। जहा सम्यक्त्व प्राप्ति के प्रसग से सात प्रकृतियो का उल्लेख होता है उनमे तीन तो दर्शनमोह सम्बन्धी अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय हैं और चार अनन्तानुबन्धी की क्रोध मान माया और लोभ हैं। यह अनन्तानुबन्धी कषाय की क्रोध मान माया और लोभ हैं। यह अनन्तानुबन्धी कषाय की चौकडी मिथ्यात्वमोह सम्बन्धी प्रकृतिया के साथ एक प्रकार से ग्रुप बनाकर रहती है। दर्शनमोह इनको नहीं छोडता और ये दर्शनमोह को नही छोडती। वास्तव मे मोह कर्म के चार विभाग किये गये। उनमे से एक विभाग तो अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ और एक मिथ्यात्व मोहनीय का तथा दूसरा विभाग अप्रत्ख्यायानावरण क्रोध मान माया लोभ का तीसरा प्रत्याक्यानावरण क्रोध मान माया लोभ का, चोथा सज्वलन क्रोध मान माया लोभ का। इस प्रकार दर्शनमोह की तीन और चारित्र मोहनीय की चार प्रकृतियॉ बताई गई। इन सातो प्रकृतियो का क्षय होता है तो क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, क्षयोपशम होता है तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, उपशम होता है तो उपशम सम्यक्त्व की उपलब्धि होती है।

कभी-कभी अनन्तानुबन्धी चौकडी को लेकर भाई सोचते हैं-इनका क्षय क्षयोपशम और उपशम होने से त्याग रूप चारित्र धर्म आ जाता है। लेकिन देखने की बात यह है कि त्याग रूप चारित्र धर्म की स्थिति इस अनन्तानुबन्धी चौकडी की स्थिति के साथ नहीं है। अनन्तानुवन्धी का क्षय क्षयोपशम या उपशम होने पर श्रद्धा की स्थिति मे रमण आता है। अत अनन्तानुबन्धी चौकडी के क्षय उपशम आदि अवस्था से क्षद्धा स्वरूप आचरण की उपलब्धि होती है। देख लेना यानि विश्वास कर लेना एक बात है और विश्वास मे रमण करना दूसरी वात हे। तो ससार के अन्दर रहने वाले जितने पदार्थ है। उनमे कौन से जानने योग्य है। ओर कौन से त्यागने योग्य हैं और कौन से आचरण करने योग्य हैं इन तीनो अवस्थाओ का ज्ञान और उसे सही रूप मे देखने का ओर तदनुरूप विश्वास रखने का नक्शा वनता है तो सम्यग् दृष्टि की स्थिति वनती है। पर विश्वास की स्थिति का रमण

होता है वहा इस चौकडी का क्षय, क्षयोपशम और उपशम का सम्बन्ध आता है। दर्शनमोह कर्म के क्षयोपशमादि से सिर्फ ज्ञान मे सम्यग् भाव आता है। क्योकि जानने रूप ज्ञान शुद्ध और अशुद्ध दोनो प्रकार का होता है उस ज्ञान के साथ सम्यक्त्व विशेषण लगने से वह सही ज्ञान कहलाता है और इतना कार्य दर्शनमोह कर्म के क्षयोपशमादि से बन जाता है। पर उस सम्यग्ज्ञान के साथ हेय, ज्ञेय, उपादेय तत्वो पर विश्वास रूप आचरण अनन्तानुबन्धी चौकडी के क्षयोपशमादि से होता है। क्योकि विश्वास रूप आचरण मिथ्याज्ञान के साथ होता है तो वह अनन्तानुबन्धी चौकडी के उदय की प्रधानता से होता है।

एक मनुष्य हिसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह आदि अठारह पापो का सेवन करता हुआ अपना जीवन बिताता है। उसके जीवन मे अठारह पापो का सेवन हो रहा है। वह अठारह पापो के विषय को जानता भी है लेकिन जानता व देखता कैसे है ? वह इस रूप मे जान रहा है कि मै अठारह पापो का सेवन कर रहा हूँ तो इनसे मुझे ससार मे सुख–सामग्री प्राप्त होगी। इस दृष्टि से ही वह आचरण करता है। अगर इसके विपरीत कोई देखता है तो वह अठारह पापो को त्यागने योग्य समझता है त्यागने योग्य देखने जानने की मति जिसमे पैदा होगी वह दर्शनमोह से सम्बन्धित है लेकिन त्यागने योग्य के साथ विश्वास की स्थिति अनन्तानुबन्धी के क्षय से सम्बन्धित हे। इसलिए अनन्तानुबन्धी के क्षय से श्रद्धा मे विश्वासरूप आचरण की परिणति होती हैं। और उसका उदय होने से अनन्तानुबन्धी यानि अनन्त अनुबन्ध–अनन्त ससार का बन्ध होता है। ससार के बन्धन का तात्पर्य यह है कि वह ससार मे परिभ्रमण करता है।

पूछा जाता है कि अनन्तानुबन्धी क्रोध की पहिचान क्या ? तो मोटे रूप मे बताया जाता है कि पहाड के ऊपर रहने वाली चट्टानो की दरारो के समान जो हो वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है। पहाड फटता हे उसमे चट्टाने टूटती हे। एक वक्त टूट जाने के बाद फिर वे वापस नहीं मिलती। वह अवस्था तब तक बनी रहती है जब तक कि चट्टानो का अवस्थान हे। यह उपमा अनन्तानुबन्धी क्रोध के लिए दी जाती हे। किसी एक व्यक्ति का किसी एक व्यक्ति से मनमुटाव हो गया और

उनमे तीव्रता आ गई जिससे दोनो के दिल के टुकडे हो गये, दोनो मे दरारे पड गई। अब उनका मिलना शक्य नहीं। मनुष्य का चोला नष्ट हो जाय तब तक भी मिले नहीं। ऐसा क्रोध अनन्तानुबन्धी क्रोध कहा गया है। ऐसे क्रोध की स्थिति जब तक बनी रहती है तब तक सुदेव सुगुरु सुधर्म पर समीचीन विश्वास नहीं हो सकता।

इसके बाद मान की स्थिति बताई गई है। उसकी उपमा बज्र के या पत्थर के खम्भे से दी गई। उस खम्भे को झुकाने की चेष्टा करे तो वह झुक नहीं सकता। वह खम्भा टूट सकता है पर झुका नहीं सकता। वैसे ही अनन्तानुबन्धी मान जिसमे होता है वह किसी भी हालत मे झुकता नहीं।

इसी प्रकार माया की स्थिति का जिक्र करते हुए शास्त्रकारो ने बास की जड का उदाहरण दिया। बास की जड कितनी टेढी मेढी गठीली होती है । वह कभी सरल नही होती। वैसे ही जिसके मन मे अत्यन्त गाढ माया है, ऐसा छल–कपट है कि वह जिन्दगी भर नही मिटे, जिन्दगी भर वह सरल नहीं बन पाये उसे अनन्तानुबन्धी माया समझना चाहिए।

लोभ के लिए किरमिची रग के कपडे का उदाहरण दिया गया है। किरमिची रग किसी कपडे पर चढा दिया जाय तो वह रग फिर उतरता नहीं। कपडा फट जायगा, धागा बिखर जायगा, और कपडे का थोडासा भी भाग अवशेष है तो भी उसका रग उडता नहीं। वैसे ही अनन्तानुबन्धी लोभ इतनी गाढ मात्रा मे जम जाता है कि वह जीव को बाह्य सम्पत्ति के साथ रगता है तो फिर वह जिन्दगी भर रगा रहता है। उसे अन्तिम समय मे भी कहा जावे कि भाई, अब तो लोभ को शान्त करो तो भी वह लोभ को शान्त नहीं कर पाता। इस प्रकार का लोभ अनन्तानुबन्धी लोभ कहा गया है।

लेकिन इस व्याख्या के साथ आपको और आगे समझना है। इन उदाहरणो को अन्दर मे कैसे बैठाना है ? जैसा पहाड की दरार के टूटने के रूप मे अनन्तानुबधी क्रोध का उदाहरण दिया तो अन्दर में क्या टूटा ? किसी को गुस्सा आया और गुस्से की स्थिति मे एक दूसरे से अलग हो गया। दिल मे दरार पड गई। तो वह अलग हुआ,

इसका मतलब है कि उसके साथ मिलना नही चाहता। वह मिलना कब चाहता था ? जब वह एक दूसरे के दिल से सयुक्त था ? पर देखने की बात यह है कि दरअसल जबरदस्त क्रोध क्यो आया ? दूसरे का दिल तोडने का क्यो प्रयास किया ? क्रोध आने का कारण क्या ? इसका कारण यह है कि अनादिकाल से आत्मा के साथ कर्मो का बन्ध मजबूती से हो रहा है जिससे आत्मा स्वय अपने आप से टूटा। टूटने का तात्पर्य क्या ? आत्मा का सहज स्वभाव शुद्ध के श्रद्धा के साथ चलने का है, वास्तविक स्वरूप की श्रद्धा से चलने का है आत्मा उस स्वभाव को बदलने वाला स्वय ही बना, यानि उन कर्मो की प्रधानता से आत्मा स्वय अपने स्वभाव से दूर हट गया। वह जो अपने स्वभाव से हट गया, जिन्दगी भर तक सभल नही पाता। उसके ऊपर पदार्थो का रग इतनी गहरी मात्रा मे चढ गया कि वह जिन्दगी भर तक अपनी सच्ची स्थिति को नही पाता।

आप जानते हैं कि प्रतिक्रमण जो किया जाता है उसका क्या मतलब ? शब्द है–प्रतिक्रमण। 'क्रमण' यानी बाहर निकल आना। कहा से ? घर से। और प्रतिक्रमणका मतलब है वापिस लौटना–वापस घर आ जाना। आत्मा के स्वरूप को शुद्ध करने के लिए नियम लिया, उस नियम मे यह आत्मा न रहकर बाहर चला गया। उसको वापस लौटाना यह प्रतिक्रमण है। यह स्थिति आगे की चौकडियो मे आयेगी पर जो आत्मा विभाव मे चली गई वह वापस घर मे आने की स्थिति मे नहीं रही तो घर से विच्छेद हो गया।

एक व्यक्ति नशा करके घर से निकल जाता है और जिन्दगी भर घर मे प्रवेश नही करता है यानि अपने से विभक्त हो गया। उस अपेक्षा से टुकडा होना कहा हे। अनन्तानुवन्धी क्रोध जीवन की स्थिति को विभक्त करता हे। वह दरार एक तरह से चट्टान टूटने के समान कही जा सकती है। समझ लीजिये–किसी इन्सान को लडने का अवसर नहीं आया । यह एकान्त गुफा मे वैठा है।, फिर भी उसके अनन्तानुवन्धी क्रोध का उदय रह सकता हे। उसने किसी दूसरे से लडकर दिल के टुकडे नहीं किये फिर उसके लिए वह उदाहरण केसे घटेगा ? इसे भी आप समझ लीजिये। क्योकि उसके अनन्तकाल से

अनन्तानुबन्धी कर्मों के आवरण से वहा भी यह स्थिति हो सकती है। जब वे कर्म उदय मे आ जाते हैं तब वह कुछ भी नहीं सोचता। वह अज्ञान अवस्था मे रहता है और मिथ्या दर्शन लगा रहता है और जहा मिथ्या दर्शन होता है वहा सम्यग दर्शन नहीं रहता। वह अनन्तानुबन्धी के साथ जोईन्ट हो जाता है जिससे मिथ्या विश्वास की अवस्था रहती है।

शास्त्रीय बातो का जिक्र आ जाने से शायद आप अटपटा सा महसूस करते होगे। पर इनको भी आप समझे। यह तत्व आपको समझना आवश्यक है।

एक पुरुष साधु बना। साधु की स्थिति चार निक्षेप के साथ होती है–नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। उसमे नाम और आकृति है। वह साधु बन तो गया पर भाव की दृष्टि से साधुता का उसमे नक्शा नहीं था। इसलिए एकाकी परिभ्रमण करता था। एक रोज एक घर मे प्रवेश करता है। उस घर मे एक महिला घरेलू काम मे लगी हुई थी। वह साधु वहा जाकर खडा होता है। भिक्षा मागता है। उस समय वह बहन भिक्षा देने को तत्पर होती है। वह भिक्षा लेता है और कुछ देर खडा रहता है, फिर चलता है। भाव साधु के लिए ऐसा नियम है कि जहा एकाकी बहिन घर मे हो उस घर मे साधु को भिक्षा ग्रहण नही करना चाहिए। प्रथम तो साथ मे किसी गृहस्थ को, जो कि दलाली करके घर बता सके, रखना चाहिये। वह साथ मे रहे तो कब तक ? घर के किनारे तक। घर के अन्दर परिवार के दो सदस्य हैं तो भी वह दरवाजे पर खडा रह जाय, यह नहीं कि घर मे वह भी महाराज के साथ अन्दर घुस जाय। वह अन्दर उस हालत मे जाय जब कि घर मे एकाकी बहिन हो। उस समय सत का भी कर्तव्य है कि दलाल को आगे रखकर जाय। वह दलाल चुपचाप खडा रहे, बोले नहीं। अगर कोई जानकार नहीं है तो भले ही उसे विधि बता दे। जानकारी हो तब तो बोलने का प्रश्न ही नहीं। वह यह नहीं कहे यह बहराओ, वह बहराओ। बहन स्वय कहे कि–श्रावकजी, आप भी हाथ परसिये तो वह मुनि को आहरादि दे, यह अलग बात है। परन्तु जबर्दस्ती बीच मे पड कर यह न कहे कि–महाराज, मेरा हाथ फरसो।

वह साधु उस बहिन के घर जाता है और भिक्षा लेकर लौट

आता है। वह एक दो रोज नही लगातार प्रतिदिन पहुँचने लगा। साधु के लिए यह भी नियम है कि एक ही घर मे बार–बार भिक्षा के लिए नही जावे। एक घर मे एक वक्त चला गया और कदाचित पानी का बर्तन साथ मे नही कह देता है–बर्तन नही है, दुबारा ले जाऊँगा। वह पानी या छाछ लेने के लिए दुबारा जा सकता है। पर भिक्षा के लिए दुबारा नही जावे, सुबह भिक्षा ले ली तो दिन भर नही जावे। दूसरे रोज नही जावे। दो रोज के अन्तर से एक समय उस घर से साधु को आहार ग्रहण करना चाहिये। अगर प्रात काल के समय पारणे की दृष्टि से प्रवेश कर जाय और वहा चौथई फुलका भी ले लिया या कोई पदार्थ ले किया तो फिर व्याख्यान उठने के बाद दुपहर या सध्या मे उस घर मे आहार के लिए नही जावे।

लेकिन वह साधु भावसाधु तो था नही। बहन कुछ बहराती है उस समय भाव साधु की स्थिति मे यह भी बताया है कि वह अपनी दृष्टि काबू मे रखे। वहा साधु की दृष्टि उन पदार्थो पर ही रहे न कि बहिन के शरीर पर। इसका शरीर कैसा है ? अवयव कैसे है ? कपडे कैसे है ? इन पर साधु क्री दृष्टि सौन्दर्य को देखने की भावना से नहीं जानी चाहिये। परन्तु वह साधु भिक्षा लेने उस बहन के घर जाता तो उसके नेत्र बार बार देखता है। बहन को कुछ शक पडा। बहन ने धैर्य के साथ एक रोज कह दिया–महाराज, आपके लिये घर तो अनेक हैं। मैने सुना है–साधु एक ही घर मे प्रतिदिन भिक्षा के लिए नही आता। आप बार–बार इस घर मे प्रवेश करते हैं, इससे मुझे शका होती है।

साधु ने कहा–तुमने बहुत दिनो के बाद यह पूछा। पहले ही पूछा होता तो मैं बता देता। मै भोजन के लिए नही आता हूॅ। मैं तो तुम्हारे नेत्रो के लिए आता हूॅ। वह बहन गभीर थी। उसने सोचा–इसकी दृष्टि चमडे के नेत्रो पर आसक्त बन गई है। इसे स्वय का भान नही है। उस बहन ने गभीरता रखी। वह साधु वहा से चला गया। दूसरे रोज फिर आया। उसकी तो वही दृष्टि थी। तब बहन ने देखा–यह नेत्र पर आसक्त है। वह अन्दर जाकर तीक्ष्ण चाकू से दोनो नेत्र निकालकर लाती है और बोलती है–लीजिये। आपको बार–बार एक ही घर मे कष्ट करना पडता है। आप इन्हे ग्रहण कीजिये। जब नेत्र

शरीर से अलग देखे तो वह सिर से पैर तक काप उठा। जो दृष्टि रूप मे आसक्त था उसमे सहसा परिवर्तन आ गया। सोचता है—हा हा ! मैंने यह क्या किया ! मेरे सरीखा पापी नही। यह कितनी साहसिक है। इसने शरीर पर जरा भी ममत्व नहीं रखा और मुझे आखे निकालकर देने लग गई। वह साधु रोने लगा। बोला—देवी ! यह तूने क्या कर डाला ?

बाई बोली—मैं क्या करती ? आपको इसकी भिक्षा चाहिये थी सो तैयार है। उस साधु को उस रोज से शिक्षा मिली, उसकी दृष्टि मे परिवर्तन आ गया। सती के साहस से, सतीत्व के प्रभाव से तथा कुछ देवो के प्रसग से नेत्र ज्यो के त्यो हो गए। वह महिला कितनी दृढ थी।

जिसकी दृष्टि पदार्थो की ओर आसक्त बनती है और अत्यधिक गाढ बन जाती है वह अनन्तानुबन्धी लोभ मे परिणत हो जाती है। उस अनन्तानुबन्धी लोभ के साथ दुनिया भर के छल कपट करके व्यक्ति तृप्ति करने की कोशिश करेगा, प्राप्ति करेगा और अभिमान से फूला नहीं समायेगा। वह इतना ढीठ बन जायगा कि जीवन पर्यन्त नमना उसके लिए शक्य नही होगा।

इस प्रकार की वृत्ति रखने वालो का अनन्तानुबन्धी के साथ सम्बन्ध है। पर जहा दर्शनमोह का क्षय, क्षयोपशम अथवा उपशम हो जाता है वहा श्रद्धा आती है। जहा श्रद्धा आ जाती है वहा फिर वह आगे बढे बिना नहीं रहता। कई मेरे भाई ऐसा भी सोच लेते हैं कि श्रद्धा मे रमण कर लिया तो बस हो गया। फिर आगे कुछ नही करना है। ऐसा सोचना भी बहुत बडी भूल है। श्रद्धा के साथ चारित्र की स्थिति होती है तो आगे के गुणस्थानो मे पाई जाने वाली चौकडियो का यानि क्रोध मान माया लोभ का यथा स्थान क्षय क्षयोपशम या उपशम होता रहता है। चौकडिया बेकार हो जाती हैं।

जहा सम्यक् श्रद्धान का सद्भाव पहले होता है वहा आगे ऐसा बनता है। दमयन्ती का नक्शा वहा चल रहा था। वे ज्ञानी महात्मा जगल के बीच मे नल आदि परिषद को समझा रहे थे। पर उनमे मुख्य रूप से नल था। नल के माध्यम से बरातियो सैनिको एव

अन्य लोगो को भी सुनने का प्रसग मिला। महात्मा ने नल से कहा–तुम्हारा और दमयन्ती का धर्मिक वृत्ति युक्त सबध का सयोग मिला है, यह पुण्यवानी से मिला है। तुमने भी जीवन मे कम तप नही किये। तुम भी दमयन्ती के साथ कई भवो से साधना कर रहे हो। अब भी तप सयम के साथ जीवन को कल्याणमय रास्ते पर आगे बढाते रहो। दमयन्ती की शक्ति कम नहीं है। यह अजब ढग की जोडी है।

बन्धुओ, जरा विचार करने की बात है। ऐसे सस्कार आज भी मिल सकते हैं। रूस मे एक बाई के विषय मे जो घटना घटी उसके नोटस् मेरे पास है। यह सोवियत अखबार सेत्सकाया झील मे छपी एक सूचना है। उसमे उल्यानुस्क की 11 वर्षीय बालिका बेरा पेट्रोवा अपने घर के बाहर की चीजे भी अपनी ऑख बन्द करके ठीक–ठाक देख सकती है, ऐसा उसमे लिखा है। उसके जीवन मे अलौकिक शक्ति आई। वह अन्य चीजे देखने के साथ ऑख बन्द करके पढ भी लेती थी। डाक्टरो को बडा आश्चर्य हुआ। उस लडकी के सामने समाचार पत्र जमीन पर रखकर उस पर चार बडी–बडी जिल्द वाली पुस्तकः रख दी जिससे अखबार के अक्षर छिप गये। फिर कन्या से पढने को कहा गया। वह एकाग्र होकर ऑखे बन्द करके पढने की चेष्टा करती है तो अखबार के अन्दर की बाते पढ जाती है। उससे पूछा गया कि तूने अक्षर कैसे पढे ? उसने बताया तो कुछ नही पर पढ लिये। डाक्टरो ने उसके शरीर की जाच की। जाच के बाद डाक्टरो ने निर्णय दिया कि इसकी दृष्टि किसी एक भाग पर जाकर जमती है तो उसे पढ लेती है। यह नेत्रो की नही बल्कि अन्दर के ज्ञान की दृष्टि है। कभी–कभी किसी आत्मा के कर्मो के क्षयोपशम की विचित्र स्थिति से ऐसी शक्ति भी पैदा हो जाती है।

शास्त्र के अन्दर भी अनेक प्रकार की लब्धिया बताई गई हैं। उनमे से ऐसी शक्ति भी किसी लब्धि के अन्तरपेटे मे से पैदा हो सकती है जिससे इस हाथ की अगुली से भी सारी चीजे देखी जा सकती है। मनुष्य अपनी शक्ति समझ नही पाता है। वह असन्मार्ग पर जाता है तो शक्ति के विकास का अवसर नही आता और धर्म के सही स्वरूप को समझ नही पाता। जब धर्म के सही स्वरूप को समझ नही

पाता तो आराधना भी नही हो पाती और जीवन प्राय सूखा बना रहता है उसके जीवन मे आनन्द और उल्लास नही रहता।

महात्मा बता रहे हैं कि तुम दोनो साथ मे रहने वाले चार हाथ वाले (चतुभुर्ज) सयुक्त तत्व हो, इनसे दुनियॉ का भला करना। पर चार पैरो वाले (चतुष्पद) बनकर किसी को लात मत मारना। नल और दमयन्ती ने महात्मा की बात ध्यान से सुनी। नल महात्मा की वाणी सुनकर अन्यधिक प्रसन्न हुआ। और दमयन्ती के प्रति जो शका थी वह दूर हो गई। नल ने सोचा–यह कितना शुभ प्रसग है। यदि मैं यहा नहीं रुकता तो जीवन भर शकित रहता। जो कुछ बनता है अच्छा ही बनता है। नल–दमयन्ती कौशल महाराज और सैनिक वगैरह सभी महात्मा को वन्दन नमस्कार करते हैं और फिर चलने की तैयारी करते हैं। सैन्य दल आगे चलने लगा और चलते–चलते सब नगरी के नजदीक पहुँचते हैं।

अब सबके मन मे उल्लास है। सभी अपने–अपने मन मे कल्पना कर रहे थे कि दमयन्ती राजकुमारी कितनी गुणवाली है ? परिषद ने महात्मा की वाणी को सुना तो उसमे भी कुछ परिवर्तन आया। अधिकाश लोग, जो ससार के विषयसुख को ही सब कुछ समझते थे, शरीर को मशीन के साथ ही चलते थे उनको भी ख्याल हुआ कि आत्मा नाम का भी कोई तत्व है। वे उत्साह के साथ चल रहे थे। राजधानी के नजदीक आसपास के उपवन देखने पर कहने लगे–अरे, अब तो उद्यान आ गये। नल राजकुमार भी बगीचो का परिचय दमयन्ती को देने लगे और बताने लगे कि निषध राजा की राजधानी अलौकिक है।

नगर के नागरिको को भी वायुवेग के साथ उनके आने की खबर मिल चुकी थी। उनमे भी खूब उत्साह था। वे भी नल दमयन्ती को देखने के लिए उमड पडते है। अब महाराज कौशल नरेश ने सोचा–राजधानी निकट आ गई है इसलिए राजकुमार नल का रथ सबसे आगे ले लेना चाहिये जिससे सभी नागरिक जन उनके दर्शन कर सके। महाराज के आदेश से सभी आगे वाले रथ रुक जाते हैं और नल दमयन्ती का रथ आगे आ जाता है। वहा पर नल दमयन्ती

के धार्मिक प्रगाढ प्रेम का प्रदर्शन हो रहा था। जनता आ आकर उनके दर्शन करती हुई विभिन्न प्रकार की कल्पना करके हर्षविभोर हो रही है। वे नगर मे प्रवेश करते हैं।

नगर निवासी सोचने लगे–हमने बहुतेरे दम्पती देखे पर ऐसा जोडा आज तक नही देखा।

रथ जब राजभवन मे प्रवेश करता है। वे उस समय खुले रथ मे थे। आजकल की तरह पर्दे का रिवाज उस समय नही था। राजभवन मे पहुँचने के बाद दमयन्ती ने देखा–मै सुसराल मे आई हूँ तो मुझे आत्मिक खुराक का भोजनालय पहले निश्चित कर लेना चाहिये।

आपके भोजन का कमरा होता है ना ?

होता है।

आत्मिक भोजन का भी कमरा होता होगा ? शायद मेरी बात नही समझे होगे कि आत्मा को भोजन कहा दिया जाता है ? आप बडे बगले बना लेगे, बहुतेरे कमरे बना लेगे। पर शायद आपका ध्यान इस ओर कम ही जाता है कि आत्मा के भोजन के लिए भी कमरा नियत रहना चाहिये। शास्त्रीय दृष्टि से प्राचीन काल मे घरो मे पौषधशाला होने का वर्णन है। वह एक अलग ही कमरा होता है जिसके अन्दर सासारिक कार्य नही होते। उसमे आध्यात्मिक जागृति को दृष्टि से आत्मचिन्तन, धर्म की क्रिया और उसका अभ्यास किया जाता था। पर आज शायद आपके घरो मे पौषधशाला का वह नक्शा प्राय नही है।

वह दमयन्ती, जिसके अनन्तानुबन्धी चौकडी का क्षय हो चुका था और वह कुछ आगे भी बढ चुकी थी, आते ही शयनगृह तलाश नही करती है। शयनगृह तो परिवार का हर सदस्य जुटाता ही है। वह सोचती–मुझे पहले आत्मिक खुराक के लिए कमरा चाहिए। इसलिए सासूजी के सामने प्रस्ताव रख देना है। वह जाकर सासूजी के समक्ष प्रस्ताव रखती है। सासूजी ने बहू (दमयन्ती) को एक कमरा दे दिया और कहा–यह तुम्हारी आत्मिक जागृति के लिए स्थान है।

दमयन्ती ने सभी से कह दिया–इस कमरे मे कोई गन्दा कार्य नही होना चाहिये। अब उसने सोचा–मै इस परिवार मे आ चुकी हू तो

मेरा बर्ताव किसी के लिए बुरा न हो। मैं सभी के साथ समभाव का बर्ताव करू। उसने सभी नौकर–दासी से घर के सदस्यो जैसा बर्ताव किया और अपने समभावी मृदु व्यवहार से सभी के मन को मोह लिया। अब सारे परिवार के सदस्य उसके इर्द गिर्द घूमने लगे। मानो राजा नाम के राजा थे, राज्य इसका था। भावात्मक दृष्टि से आज्ञा का सचार उसके वहा से होता था। सुगन्ध कहीं पर भी क्यो न हो, वह फैले बिना नहीं रहती। उसके सद्गुणो की महक सभी ओर फैलने लगी। लोग उसके सद्गुणो से आकर्षित और प्रभावित हो होकर दर्शन करने आते। दमयन्ती के गुणो के कारण नल की भी कीमत बढ गई। सारे देश मे नल–दमयन्ती की महिमा होने लगी।

यह कथा भाग का वर्णन है। यह वर्णन तो पात्रो के अनुरूप है। आप इस कथा भाग को जीवन मे लाने की चेष्टा करे। सासारिक दृश्य तो आप जीवन मे लाते हैं–पर किस ढग से ? श्रद्धा की स्थिति एव हेय–ज्ञेय उपादेय की जानकारी होनी चाहिये, यह आपको दमयन्ती के जीवन से सीखना है। वह धर्म–आराधना करने बैठी। आप भी धर्म की आराधना करने के लिए तत्पर हैं। शारदासघ के भाई सोहनलालजी आये। उन्होने आते ही तेला अगीकार कर लिया। शारदासघ वाले कल भी कुछ बोले थे। उनकी भावना मैं समझ रहा था। मेरा उधर जाने का प्रसग आया। उनकी भावना किस ढग की है वह भी सामने आई। बहुतेरे गावो के भाई–बहन जीवन का परिमार्जन करने के लिए तत्पर हैं। आप सभी शक्ति के अनुसार इस मानव–जीवन मे सही ज्ञान दर्शन चारित्र के साथ सुगुरु सुदेव सुधर्म को समझ के अपने अन्त कारण से आगे बढने का प्रयास करेगे तो आपका जीवन मगलमय बनता जायगा। घाती कर्म की डूगरिये, जो आत्मा पर आच्छादित हे, हटती जाएँगी। इसी प्रकार उन चौकडियो का क्षयोपशमादि करते हुए चरण–विकास की ओर आगे बढ सकेगे।

इसी भावना के साथ

आत्म-अर्पण

सुमति चरण रज आतम अर्पणा, दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी,
मति तर्पण बहु सम्मत जाणिये, परिसर्पण सुविचार, सुज्ञानी।। 1 ।।
त्रिविध सकल तनुधर गत आतम, बहिरातम धुरि भेद सुज्ञानी,
बीजो अन्तरआतम तीसरो, परमातम अविच्छेद सुज्ञानी।। 2 ।।

ये भगवान् सुमतिनाथ की प्रार्थना की कडिया है। प्रभु के अनेकानेक नामो मे से एक सुमतिनाथ नाम है। उनकी स्तुति के प्रसग से कवि की भावना है कि सुमतिनाथ भगवान के चरणो मे मैं अपनी आत्मा की अर्पणा करू। क्यो कि प्रभु के चरणो मे जब तक अर्पण नहीं होगा, तब तक उसे वास्तविक शान्ति प्राप्त नही होगी। इसलिए कवि अपनी अभिलाषा को कार्य रूप मे परिणत करने के लिए अर्पण करना चाहता है।

इस कविता की कडी का उच्चारण आपके सामने भी रख दिया। कविता कब कैसे उद्धेश्य से बनी, वह कवि की भावना के ऊपर निर्भर हे। पर आज का प्रसग आप लोगो की भावना पर अवलम्बित हे। आपके सामने सामूहिक रूप से उच्चारण होता है वह भी एक दृष्टि से प्रार्थना रूप मे समर्पण करने की भावना से उच्चारण का प्रसग आता हे। आप सोचते होगे महाराज के साथ हम भी इस प्रस्ताव मे सम्मिलित हुए हैं। प्रस्ताव कवि की भाषा मे है। उच्चारण मेरी जिह्वा ने किया हे ओर साथ ही आपने भी सहयोग दिया। तो क्या में यह पूछ लू कि आप भी अपनी आत्मा की अर्पणा प्रभु के चरणो

मे रखना चाहते हैं ? आप बोलने मे सकोच पाते हैं। कविता की कडी के साथ बोले जिससे कि मैं समझू आप भी सहमत हो रहे हैं ?

सुमति चरणरज आतम अर्पणा।

कुछ लोग कुछ तो बोले हैं। पर कुछ सकोच कर गये हैं। कौन जाने महाराज क्या कहना चाहते हैं ? मैं जो कहना चाहता हूॅ वहीं तो कह रहा हूॅ। आप सोचते हैं प्रभु के चरणो मे आत्म–अर्पण किस रूप मे हो ? इसके लिए पहले प्रभु के चरणो को समझना होगा, तब अर्पण का सवाल आयेगा।

तो सबसे पहले आप स्वय को सभाले, आत्मा को सभाले। आपकी आत्मा कहा है ? आप जिसकी समर्पण करना चाहते हैं, जिस वस्तु को किसी के चरणो मे उडेलना चाहते हैं उस वस्तु को पहले देख तो ले। मुख्य प्रश्न यह है कि पहले अपने को समझ ले। आज का मानव वर्तमान के सब विषयो मे घुलमिल रहा है और इतना घुममिल रहा है कि उसे अपना कुछ भान नहीं है। कई भाइयों को यह पता नहीं कि वे कौन हैं ? कहा से आये ? और कहा जायेगे ? अगर पता है तो बतलाइये। मैं क्या कहूॅ, भगवान् महावीर ने लगभग 2500 वर्ष पूर्व घोषणा की और उसका अनुवाद सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी के सामने रखा।

सुयँ मे आउस ! तेण भगवया एवमक्खाय–इहमेगेसि णो सण्णा भवइ।।1।। पुरत्थिमाओ व दिसाओ आगओ अहमसि, दाहिणोओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, उडढाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि, अहो दिसाओ वा आगेओ अहमिसि, अण्णयरीओ वा दिसाओ वा अणुदिसाओ वा आगओ अहमसि, एवमेगेसि णो णाय भवइ।। 2 ।।

श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मान शिष्य ! मैंने सुना है उन भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार फरमाया था कि इस लोक मे किन्हीं प्राणियो को सज्ञा नहीं होती है जैसे कि–पूर्व दिशा से मैं आया हू, अथवा दक्षिण दिशा से मैं आया हूॅ अथवा पश्चिम दिशा से मैं आया हूॅ, अथवा उत्तर दिशा

से आया हूँ, अथवा ऊँची दिशा से मैं आया हूँ, अथवा नीची दिशा से आया हूँ, अथवा किसी एक दिशा से आया हूँ, अथवा अनुदिशा से मैं आया हूँ। इस प्रकार किन्ही जीवो को ज्ञात नही होता है।

इस प्रकार कइयो को सज्ञा नही होती, सज्ञा का मतलब विशिष्ट चेतना–अपने आप की शक्ति का भान कइयो को नही होता।

सकेत किया है कि आत्मा सोच नही पाता कि मै कहा से आया हूँ ? ऐसी सज्ञा उसमे नही होती हैं। 'नही होती' ऐसा भगवान ने नही कह कर 'नो भवई' ऐसा कहा है। तो यहा पर 'नो' का अर्थ अर्द्ध निषेध से लेना चाहिये। शिष्य प्रश्न करता है कि भगवन् 'न' शब्द का प्रयोग नही करके नो शब्द का प्रयोग क्यो किया ? यही कह देते कि सज्ञा नही होती। इसक बदले 'नो सज्ञा भवइ' ऐसा क्यो कहा ? तो शास्त्रकार कहते है–वहा 'नो' लगाना आवश्यक था। सज्ञा बिलकुल ही नही होती, यह बात नही है। सज्ञा होती तो है पर उससे शान्ति का सचार नही होता बल्कि अशान्ति होती है। सज्ञाए कई प्रकार की बताई गई है। उनमे से एक आहार की सज्ञा भी होती है। कही किसी भी अवस्था मे आत्मा क्यो न हो, वह अपने भोजन को भूलता है क्या ? आहार की सज्ञा समय पर होती रहती है। चाहे वह आत्मा गर्भ मे भी क्यो न हो, वहा पर भी आहार की सज्ञा है। वह माता की रसहरणी नाडी से रस ग्रहण करता है। उस अन्दर की स्थिति का तो सबको पता नही लगता, फिर भी बाहर आने के बाद तो आहार को प्रत्येक आत्मा समझता है और उसकी आवश्कता को अनुभव करता है।

आप देखते है–बच्चा माता की कोख से बाहर आता है। कुछ ही क्षण के पश्चात चॉ चू करता है। किसके लिए ? आहार सज्ञा व्यक्त करने के लिए कि मुझे भूख लगी है। वह स्पष्ट शब्दो मे तो नही बोल सकता, पर वह अपने रोने की भाषा मे बोल रहा है। माता भी उसके सकेत को समझ कर झट से स्तनपान कराती है और उसकी आहारसज्ञा की पूर्ति होती है। यह ज्ञान उसमे होता है।

कुछ बडा हुआ तो आहारसज्ञा के साथ भयसज्ञा भी आ जाती हे। वह इसी जन्म की नहीं, अन्य अनेक जन्मो के भय की सज्ञा रहती हे। सज्ञा का मतलव अन्तरभावना या अनुभूति। वह और बडा होता है

तो विषयभोग और परिग्रह की सज्ञाएँ बढ जाती है। ये सज्ञाएँ आत्मा के साथ अनादिकाल से सम्बन्धित है इसलिए बाह्य पदार्थों की भावना से अधिकाश प्राणी उनको ग्रहण करने की अभिलाषा रखते हैं। ये सज्ञाए सभी ससारी जीवो मे होती है। क्रोध–मान–माया लोभ की सज्ञा के साथ एक लोकसज्ञा और एक ओघसज्ञा भी है। कभी कभी अभ्यास के कारण भी ओघसज्ञा बन जाती है। रोजाना कार्य करते करते वह स्वभाव बन जाता है। भोजन का अभ्यास प्रतिदिन रोजाना का है तो कभी अपवास पच्चखने के बाद भी भोजन के समय रसोई घर मे पहुँच जाते हैं और कभी कभी तो ऐसा भी सुनने मे आया है भूल से जीमने भी बैठ जाते हैं, जीम लेते हैं। यह ओघसज्ञा है। इस प्रकार की सज्ञाए तो न्यूनाधिक रूप मे प्राय पाई जाती है। पर जो विशिष्ट सज्ञा होनी चाहिये वह नहीं हो पाती। इसलिए यहा 'नो' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'नो' का अर्थ होता है आधा निषेध। अत जो स्वाभाविक सज्ञाए है उनका िषेध न कर जो विशिष्ट सज्ञाए हैं उनको 'नो' शब्द से नही होना बतलाया है। जबकि वास्तविक सज्ञा होनी चाहिये। वास्तविक ज्ञान होना चाहिये कि मैं किस दिशा से आया ? अर्थात् कहा से आया, कहा जाऊगा ? इस बात का भान नहीं होता तो अपने आपको समझने की योग्यता भी नहीं आती। जिसे यह भान नहीं वह भगवान के चरणो मे कैसे अर्पण कर सकेगा ?

यदि भगवान के चरणो मे अर्पण की भावना है तो भगवान के चरण कैसे हैं यह पहले समझिये। भगवान के चरण आपके हमारे चरणो जैसे नहीं हैं। उनके चरण दिव्य हैं कवि ने सकेत दिया–

सुमति चरण रज आतम अर्पणा
दर्पण जेम अविकार सुज्ञानी।

उनके चरणो की उपमा देते हुए बताया कि जैसे दर्पण अविकार है वैसे ही भगवान् के चरण अविकार हैं। आपने दर्पण तो देखा होगा ? उसके अन्दर आप कुछ देख सकते या नहीं ? देखेगे तो क्या देखेगे ? स्वय को देखेगे। स्वय के शरीर की आकृति को दर्पण मे देखा जा सकता है आप दर्पण के सामने अपनी आकृति देखने के लिए खडे हुए तो आपकी आकृति आपके पास रहेगी या

दर्पण के अन्दर रहेगी ? कभी विचार किया है ? यदि आप कहे कि हमारी आकृति हमारे पास ही है तो दर्पण मे कुछ नही देखेगे। यदि दर्पण मे देख रहे है तो आपके पास आकृति कैसे रही ? दर्पण मे प्रतिबिम्बित आकृति और आपके पास की आकृति एक है या अलग है ? दर्पण स्वच्छ होने के नाते आपकी आकृति का प्रतिबिम्ब उसमे पडता है और आप जान लेते है कि मेरी आकृति कैसे है। वह जानना कब होगा ? जब दर्पण प्रतिबिम्ब ग्रहण करेगा, या दर्पण के सामने आप खडे होगे तभी आकृति को जानेगे।

यद्यपि यह तो एक छाया प्रतिछाया का नक्शा है। पर इस रूप से आप आत्मा की आकृति को ठीक समझ कर प्रभु के चरणो मे अर्पण करने की सोचेगे और प्रभु के चरणो की छाया मे अपना प्रतिबिम्ब देख लेगे तो अपको ज्ञात होगा कि प्रभु के चरण काच से भी अत्यधिक निर्मल हैं। पर वे स्वय शरीर पिण्ड मे नही है उनके वर्ण, रस, स्पर्श आदि नही हैं वे चरण क्या है ? दर्शन चारित्र चरण है। चरण दो होते है ऐसे ही प्रभु के भी दो चरण बताये है–

सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव

श्रुतधर्म और चारित्रधर्म ये दो चरण अत्यधिक निर्मल हैं। स्फटिक मणि के समान स्वच्छ है। श्रुत और चारित्र धर्म इस प्रकार की स्थिति से रहते है कि कोई आत्मा अपने स्वरूप को समझ कर उनके लिए अर्पण कर देता है तो वह अनन्त सुख, दिव्य शान्ति पा सकता है। फिर वह वास्तविक सुख शान्ति उससे दूर नही रहेगी, उसके पास हाजिर हो जाती है।

वह आत्मा की अर्पणा कितनी जरूरी है उसे समझने की आवश्यकता है। आप इसे सहज ही समझ कर तृप्ति करना चाहेगे तो जितनी चाहेगे उतनी सफलता नही मिल पायेगी, क्यो कि आप अर्पणा को जितनी सहज समझ रहे हैं उतनी यह सहज नही है। मै श्रुत और चारित्र धर्म का उल्लेख कर रहा हू। वह उज्जवल मार्ग है। आत्मा का निज गुण है और यही निज गुण पूर्ण शुद्धीकरण की अवस्था मे प्रकट होता है तो सिद्ध अवस्था तक पहुँचा सकता है। जव तक वह पूर्ण अवस्था प्रकट नहीं होती तव तक आशिक रूप मे भी पालन करना

चाहिये। जितना–जितना पालन किया जाता है उतनी–उतनी अर्पणा होती है। मनुष्य की श्रुत चारित्र रूप धर्म मे जितनी–जितनी अर्पणा होती है उतना–उतना ही उसका प्रतिबिम्ब भासित होता है। पूर्ण अर्पणा हो जाने के पश्चात् अनन्त शक्ति स्वरूप जो आत्मा है इसमे सर्व सुख की शक्ति व्यक्त हो जायगी। इस स्थिति को प्रबल बनाने के लिए सोचना है। जम्बू स्वामी को सुधर्मा स्वामी ने कहा–कि किसी–किसी को सज्ञा नहीं होती। उसमे कहा–किसी किसी को नही होती, पर किसी–किसी को होती भी है। जिनको होती है वे फिर पीछे नहीं रहते।

जम्बू कुमार को विशिष्ट सज्ञा हो गई। आहारादि का सज्ञा तो थी ही। भोजन करना, ससार की पैदायश करना, भवभ्रान्त होना, लोभ–लालच करना, छल–कपट करना इत्यादि तो ससारी जीव प्राय करते ही हैं। वहा आत्मा की अर्पणा का नक्शा नही आ सकता। इससे वास्तविक सुख–शान्ति नहीं मिल सकती। मनुष्य आहार किस भावना से करता है ? आहार करूगा तो मुझे सुख शान्ति मिलेगी। यदि यही बात है तो उसकी परीक्षा भी आपके पास है। एक व्यक्ति भोजन करेगा और एक वक्त करेगा तो उसे सुख शान्ति मिलेगी और दो वक्त करेगा तो अधिक सुख शान्ति मिलेगी ? चार पाच छ वक्त करे तो क्या होगा ? उसे तो अधिक सुख शान्ति मिलनी चाहिये। वह दिन भर खाता ही रहे उसे सुख शान्ति मिलेगी ? अगर वास्तविक सुख शान्ति का प्रसग इससे आता, तो वह दिन भर खाता ही रहता।

आप जामाता बनकर सुसराल गये होगे ?

आप तो हस देते हैं । देखते हैं महाराज कैसे भद्रिक बन रहे हैं। लेकिन मैं भद्रिक बन रहा हूँ तो हर्ज की बात नहीं है। वहा आप जीमने बैठे और पाच पकवान आपके सामने आ गये। आपने पेट भरकर जीम लिया। फिर सासूजी या और कोई पाच पकवान जबरदस्ती खिलाना चाहे–आपका हाथ पकड कर खिलाना चाहे तो आप क्या बोलेगे ? ओ साहब । अब दु ख मत दो।

अरे भाई, जब खाने मे सुख था तो दुख कहा से आया ? उन लोगो ने उसी मे सुख समझ रखा है। इसलिए जवाईजी को अधिक

खिला रहे है। पर यह नही सोच रहे है कि हम इनका अहित कर रहे है, पडौसी का अहित कर रहे है। क्या यह विकारी सज्ञा नहीं है ? कहना होगा उनको आत्मा के स्वरूप का भान नही है। भगवान् के चरणो का खयाल नही है। इसलिए तो ऐसा चल रहा है। आप नही जान रहे है कि जवाई जी को अधिक ठूस ठूस कर खिलाने से उनकी जठराग्नि खराब हो जायगी, उनका स्वास्थ्य बिगड जायगा, दिमाग खराब होगा और तामसिक वृत्ति बनी तो जीवन विकारी वृत्तियो को प्रश्रय देने लग जायगा। फिर आप डाक्टरो को पास दौडगे। बढिया से बढिया दवाई की माग करेगे। आप ऐसा तो कर लेगे, पर भगवान् के चरणो मे अपनी अर्पण के लिए तत्पर नही हो पायेगे।

चरित्र धर्म के दो भेद है जिसमे आचरण और तप बताया है। अगर आप तप के चरण मे जवाईजी को अर्पण कर दे तो कुछ शान्ति मिल जायगी। आप उस रोज उन्हे उपवास करादे। पर उपवास नही करायेगे। आप तो उल्टा कहेगे–नही साहब, आपको तो जीमना ही पडेगा। अगर नही भायेगा तो चूर्ण ्टनी खिलायेगे। वास्तविक सज्ञा नही होने के कारण जीवन बेकार हो जाता है। वहा स्वय का नुकसान होता ही है पर साथ ही साथ ससार के पदार्थो की भी व्यर्थ मे बर्बादी होती है। अधिक खाना और अधिक खिलाना यह भी एक तरफ से अन्याय की वृत्ति का कार्य है। शास्त्रकारो ने सूक्ष्म व्याख्या करते हुए यहा तक कह दिया कि यह एक तरह से चोरी है। जिन पदार्थो को आप श्रम से पैदा नही कर सकते, उनको बिगाडने का आपको क्या अधिकार है ?

आवश्यक वस्तु लेना, हक का लेना दूसरी बात है, पर ठूस कर भरना और फिर बीमार होकर सम्पत्ति का अपव्यय करना यह क्या है ? उधर पडोस मे बिचारा गरीब आदमी भूख से तिलमिला रहा है, छटपटा रहा है। क्या आप जवाईजी को ठूसना कम करके पडौसी मे रहने वाले गरीब आदमी का खयाल रखेगे ? शायद उसकी तरफ आपका ध्यान तक नही जायगा। बिचारा रोता हुआ याचना करेगा भी तो आप डाटेगे कि हमारे घर तो जवाईजी आये हुए हैं क्यो हल्ला

मचा रहा है । उसे आप अटसट बोल जायेगे। यह ससार की सज्ञा मानव को कहा और किस ओर ले जा रही है ? इसका प्राय मानव को भान नही। वह इधर उधर भटक रहा है मृगतृष्णा मे जल समझने वाले मृग की तरह दौड लगा रहा है।

मृगतृष्णा जानते हैं ? जगल का पशु , वह भद्रिक हिरण । उसे ज्यादा विवेक नही होता। प्यास भी आहार सज्ञा के अन्तर्गत है। उससे पीडित होकर हिरण सब चीजो को भूलकर दृष्टि डालता है। उसे सूर्य की गर्मी के कारण जगल मे बहुतेरा पानी नजर आता है। वह सोचता है चलू वहा जाकर पानी ले लू ? वह ताकत लगाकर भागता है पहले से ही पानी की प्यास है। और दौडने से फिर पसीना आ जाता है। वह वहा जाकर देखता है, पानी नही मिलता उसके पानी की सज्ञा समाप्त नहीं हुई। वहा से फिर पीछे मुडकर देखता है उसे पानी, उसी जगह, जहा से भागा था, सूर्य की किरणो के कारण नजर आता है वह फिर लौटकर भागता है। हैरान हो जाता है पर उसकी प्यास बुझती नहीं। उसे सुख शान्ति नही मिल पाती।

आज के मानव–समुदाय की भी एक दृष्टि से यही दशा बन रही है, ऐसा कह दू तो क्या गलत होगा ? मानव की प्यास कौनसी है ? वह तृष्णा की प्यास है। रात–दिन मनुष्य उसमे घुल रहा है ? अगर देखा जाय तो इस हालत मे उसे न आत्मा का ही ज्ञान है और न प्रभु के चरणो का खयाल है । ऐसे प्राणियो की बडी दयनीय दशा होती है यह ससार मे पाप बढाने की स्थिति है।

बन्धुओ । मैं क्या बताऊ ? यह तृष्णा आत्मा का भान भुलाने वाली है। तृष्णा से ग्रस्त मनुष्य न्याय–नीति की तरफ भान नहीं रख पाता ससार के पदार्थो की तरफ आसक्ति भावना को लेकर चलता है। वह प्रभु के चरणो मे अर्पणा क्या कर सकेगा ? मानव को तो हर क्षण यही सोचना चाहिये कि मेरा जीवन मगलमय कैसे बने ?

महाराजा नल जीवन को मगलमय बनाने की भावना को लेकर चलने लगे। उन्होने आत्मा की अर्पणा कुछ प्रभु के चरणो मे रख दी थी, पर उससे पीछे हटाने वाले महाशय भी पहुँच गये। उस दुष्टमति ने, जिसके मन मे मृगतृष्णा के समान ससार के पदार्थों की

लालसा थी, सोचा मै पैसा लेकर कुबेर राजकुमार का इलाज कर दू। कुबेर शरीर से तो बीमार था नही, मानसिक दृष्टि से बीमार था। उसका रोग असाध्य रूप मे परिणत होता जा रहा था। उसके मन मे परिग्रह सज्ञा इतनी प्रबल हो गई कि वह स्वय अपने आप को भूल गया, अपने बडे भ्राता को भूल गया। सोचने लगा—बडे भैया के पास कैसा सुख है ! कितनी सपत्ति है ? कितना मान सम्मान है ? मुझे भी वह मिले। इस भावना से वह सोच रहा था।

भावना को कार्यान्वित करने के लिए कुबेर को एक मित्र सहायक मिल गया। वह दुष्टमति नल के पास भक्त बनकर रह रहा था। वह एक रोज नल को जगल मे ले गया। वहा ले जाकर उनको आराम पहुचाया। जब उनको प्यास लगी तो वह पानी लाने गया। कुछ दूर जाकर देखा तो एक झरना बह रहा था। वहा उसने पत्ते लिए। उनमे पानी भरकर लाया और महाराज को पिलाया। उससे महाराजा को बडी शान्ति मिली। फिर महाराजा की भूख की सज्ञा जागृत हुई तो उसने जगल मे से मधुर फल लाकर महाराज को खिलाये। महाराजा को उससे बडा सन्तोष हुआ। महाराजा ने देखा यह मेरा कितना परम हितैषी है जो ऐसी भयकर स्थिति मे तन—मन से सेवा कर रहा है। दुष्टमति अपनी कूटनीति के अनुसार कुछ नशे के पदार्थ भी साथ लाया था उसने वे भी दिए। महाराजा ने ले लिये और विश्रान्ति की।

ऐसी स्थिति मे नल महाराज को उसने शान्ति दी। अब नल महाराज का विश्वास और अधिक बढ गया कि यह तो मेरा अत्यधिक हित सोचने वाला है, मददगार है इसे अब छोडना नही चाहिये।

अब वहा से चलना था—राजधानी मे। तो महाराजा ने कहा—अब क्या करना ? वह बोला—महाराज आप फ्रिक मत करिये। अभी अपन राजधानी के लिए चल देते है। ऐसा कह वह उनको लेकर राजधानी पहुँचता है। राजधानी पहुँचने पर महाराजा नल को सूचना मिली कि आपका अधीनस्थ तक्षशिला का राजा आपकी आज्ञा स्वीकार करने मे तत्पर नही हो रहा है। उसका कहना है कि जब तक महाराजा नैषध नरेश था तब तक तो मैं उनके साथ सम्बन्धित था, पर महाराजा ने

सारा राज्य का भार नल को सौंप दिया। नल राजकुमार मुझ से छोटे हैं, कम बुद्धिशाली है, विवेकवान भी नही हैं। मैं उनकी आज्ञा कैसे मान सकता हूँ ? मैं स्वतत्र हूँ। वह इस प्रकार का प्रचार कर रहा था। नल महाराजा ने यह बात सुनी तो अपने विश्वासपात्र मित्र से परामर्श किया। नल महाराजा स्वय भी विचार कर रहे थे।

यद्यपि नल ने राज्य की सीमा काफी बढाई। जब से दमयन्ती यहा आई तब से राज्य मे वृद्धि हुई वह पुण्यवान आत्मा थी। नल सोच रहा है कि आधे भारत मे मेरा राज्य है और तक्षशिला का राजा मेरे आधिपत्य को मानना नहीं चाहता। यह शक्य नही, मेरे हक मे वह राज्य आ गया है तो मेरा ही आदेश चलना चाहिये।

एक तरफ तक्षशिला का राजा कदम्ब था। वह सोचता मेरी स्वतत्रता सुरक्षित रहे। दूसरी और नल सोच रहा था कि वह मेरे अधीन रहे। दुष्टमति ने कहा—महाराज, आप राजाधिराज राजा हैं। अगर उसे आप वश मे नहीं करेगे तो कौन करेगा ? आपको तो उसे वश मे करना ही चाहिये और युवराज पद पर जो कुबेर राजकुमार है वह तो बहुत डरपोक है, बुजदिल है, कायर है। आप युवराज पदवी भी अपनी सन्तान को सम्भला दीजिये। कुबेर इसके लिए योग्य नहीं। दुष्टमति इस प्रकार की भावना रख रहा था। उसके मन मे कुछ और ही भावना चल रही कि मैं महाराज के मन मे विश्वास अधिक कायम कर सकू। वह दुष्टमति नल की प्रशसा और कुबेर की निन्दा कर रहा था। आप इस नीति को क्या सज्ञा देगे ? ऐसा करने वाले को आज की दुनिया होशियार कहती है। समझती है यह चलता पुर्जा है। लेकिन जीवन की दृष्टि से यह बहुत ही पतन का रास्ता है। कूटनीति है, राजनीति नहीं। जब षडयत्र की रीति से नल के सामने दुष्टमति ने यह बात रखी तो नल नरेश को उस पर और अधिक विश्वास हुआ। उसने सोचा कि यह मेरा कितना हितैषी है जो कुबेर को युवराज पद से भी हटना चाहता है और मेरे पुत्र को राज्य दिलाना चाहता है। यह तो मेरा अत्यन्त विश्वासपात्र है।

दुष्टमति की कोशिश से नल की अधिकार लिप्सा बढ गई। सत्सगति का सयोग अब उन्हे नहीं मिल रहा था। दमयन्ती की शिक्षा

भी वे कम सुन रहे थे और दुष्टमति को ही सव कुछ मानकर चल रहे थे।

उसके कथन के उत्तर मे कहा–दोस्त मै अभी दूत भेजता हूँ।

ऐसा विचार कर वे होशियार दूत को रवाना करते है। दूत तक्षशिला पहुँचा और वहा के महाराजा को नल महाराज का परवाना दिया।

प्राचीन काल का तरीका था कि परवाना हाथ मे लेकर नही पहुँचते उसे भाले की नोक पर रखकर दूर से ही दिया जाता था। तक्षशिला महाराज को नल महाराज का परवाना सभा मे दिया गया। कदम्बक महाराज स्वय अभिमान से परिपूर्ण थे। सत्ता और सम्पत्ति का नशा था। इसलिए कह दिया–जाओ तुम्हारे स्वामी को कह देना कि मै उनकी आज्ञा मानना नही चाहता। यदि मनवानी है तो पहले अपनी शक्ति की आजमाइश मेरे साथ करे। यदि नल जीत जाते है तो मै नतमस्तक होकर उनकी आज्ञा मानने को तत्पर हूँ और मैं जीत जाता हूँ तो आधे भारत के राज्य की शक्ति मेरे चरणो मे रखनी होगी। यदि मेरी शर्त स्वीकार न करे तो चुपचाप बैठ जाय। मुझे आज्ञा मनवाने का कष्ट न करे। उसने बडे गर्व के साथ इस प्रकार कहा।

वह दूत लौट कर आता है और नल महाराज को तक्षशिला नरेश का उत्तर सुनाता है। नल महाराजा को भी जोश आ गया कि वह इस प्रकार मेरी आज्ञा की अवहेलना करता है। दुष्टमति ने भी नल महाराज को समझा दिया कि तक्षशिला के राजा की यह उद्दण्डता शान्त करनी चाहिये। नल महाराज ने मत्री को आदेश दिया–सेना तैयार करो। मत्री सेनापतियो को कह कर सेना तैयार करवाता है।

महाराज नल सेना लेकर तक्षशिला की राजधानी के नजदीक पहुच गये। उन्होने पुन सदेश भेजा कि अब भी मेरी आज्ञा प्रसन्नता पूर्वक मानना चाहते हो तो ठीक, नही तो मै लडने आ गया हूँ। तक्षशिला का राजा भी सैन्य शक्ति के अभिमान के साथ मैदान मे आकर डट जाता है। आपस मे लडने भिडने की स्थिति बन रही है।

उस समय नल के अन्तर–मानस मे रह हुए, सस्कार कुछ

जागृत हुए। उसके बचपन के कुछ सस्कार जमे हुए थे। नल के बचपन मे धार्मिक सस्कार थे। तरुणाई मे भी अच्छे सस्कारो का पोषण हुआ था। पर इन दिनो दुष्टमति के ससर्ग के कारण उसमे कुछ कुव्यसन आ गये थे जिससे वर्तमान मे वैसे सस्कार नही रह पाये जैसे बचपन मे थे। पर बचपन के सस्कारो के कारण उसमे अकस्मात् कुछ अच्छी भावना जागृत हुई। सोचा--मुझे कदम्बक से आज्ञा मनवानी है और उसको माननी है यह तो हम दोनो के बीच की बात है। ऐसी स्थिति में, हमारी अहवृत्ति की तृप्ति के लिए हजारो बेचारे निरपराधियो का खून खराबा हो यह कैसी बात है ? यह श्रेयस्कर नही होगा। यह भूमि किसी की न तो हुई और न होगी। राजाओ ने घोर सग्राम की स्थिति उपस्थित की, पर हुआ क्या ? वे बडे-बडे चले गए और यह जमीन यहीं की यहीं रह गई।

इस प्रकार की भावना नल के मन मे पैदा हुई। वे अपनी भावना को कार्य रूप मे परिणत करने की रहे सोच थे।

उसी समय दूसरा विचार आया युद्धभूमि छोडकर हट जाना भी योग्य नहीं, यह बहुत बडी कायरता होगी। लोग कहेगे कि कदम्बक महाराजा की सेना देखकर नल डर कर भाग गया । मैं अपनी धार्मिक वृत्ति के साथ चल रहा हू, इसे कौन समझेगा ? अब क्या करना चाहिये ? अब तो कोई ऐसा ही उपाय करना चाहिये जिससे कि जनता की रक्षा भी हो जाय और अपकीत्ति से भी बचा जा सके।

अभी तक नल पर दुष्ट मति का पूरा असर नहीं हुआ था। यह मानवता की स्थिति उनके मन मे आ रही थी।

प्राचीन काल मे युद्ध भी होते थे तो नीति के साथ होते थे। युद्ध के स्थल पर भी जब तक युद्ध प्रारम्भ नहीं होता युद्ध की घोषणा नहीं होती तब तक शत्रु सैनिक भी परस्पर एक दूसरे से मिलते रहते थे। नल महाराज ने सोचा-कदम्बक से बिना शस्त्र लडा जावे। यह कार्य हम दोनो के बीच का है। नल महाराज ने एक प्रस्ताव रखने की सोची कि दोनो के बीच की लडाई है तो दोनो बिना शस्त्र के लड ले। ऐसा सोचकर नल महाराज ने यह सूचना कदम्बक महाराज को

करवाई। कदम्बक ने सोचा मेरा सैन्य बल देखकर नल समझौता करना चाहता है।

कदम्बक महाराज भी किनारे पर आ जाते हैं–हा महाराज आपकी बात ठीक है।

नल महाराज ने कहा–देखो भाई, तुमने मेरी आज्ञा की अवहेलना की। मै नीति के साथ कार्यवाही करने के लिए तत्पर हूँ। मै तुम्हारी सैन्य शक्ति को देखकर पीछे हटने वाला नही हूँ। तुम या तो मेरी आज्ञा मान लो, नही तो हम दोनो लड ले। जो जीत जाय, उसी का राज्य। कदम्बक महाराज ने कहा–मै आज्ञा मानने को तैयार नही, पर आपकी दूसरी शर्त मानने को तैयार हूँ।

कदम्बक सोच रहे थे कि मै नल से अधिक शक्तिशाली हूँ, इसलिए उन्हे पछाड दूगा। मेरा आधे भारत पर राज्य हो जायगा।

दोनो ने अपने–अपने सेनापतियो से कहा–सेनाए दूर हटा दो। हम दोनो के बीच मे युद्ध होगा।

नल महाराज कहने लगे–युद्ध की बात मैं स्वीकार करता हूँ पर पहले अहिसक युद्ध करना है अपने बीच हिसा का भी युद्ध नही होना चाहिये। पहले एक दूसरे पर प्रहार नही करे। कदम्बक महाराज ने देखा अब ये गिडगिडा रहे हैं। कदम्बक महाराज मन मे इस प्रकार की भावना ला रहे थे कि नल पीछे हट रहा है। पर नल महाराज कायर नही थे। उनके मन मे भावना थी कि हिसा जहा तक बन सके नही करनी है। इस भावना से वे चल रहे थे। कदम्बक ने वह बात भी स्वीकार की। कहा–महाराज, आप कहते हैं तो पहले अहिसक युद्ध ही लड लेते हैं।

अहिसक युद्ध क्या ? दोनो दृष्टि बाधकर खडे हो जाय। जिसकी पहले पलक गिर जाय या आखो मे पानी आ जाय वह हारा। जिसके पलक न गिरे वह जीता। उसने नल महाराजा का प्रस्ताव स्वीकार किया और दोनो खडे हो गये। नल महाराजा का प्रारम्भिक जीवन धार्मिक श्रद्धा का था, मर्यादित जीवन था। वे डटकर खडे हो गये। कुछ क्षण तक तो कदम्बक राजा टिका रहा फिर उसकी आखो से पानी पडता है। नल महाराजा ने कहा–हो गया युद्ध। तुम अब भी

मान जाओ।

पर वह ऐसे कब मानने वाला था ? बोला—ऐसे कैसे हार जीत का पता लगे ? नल महाराजा ने कहा—अच्छा आप अपनी भुजा खडी करिये मैं झुकाता हूँ। फिर मैं अपनी भुजा खडी करू तो आप झुका दीजिये। कदम्बक ने देखा यह ठीक है। इसलिए कह दिया—मुझे मजूर है।

कदम्बक महाराज ने भुजा ऊँची की। नल महाराज ने चींट्टी उगली पकडकर कमल नाल की तरह उसे झुका दिया। कदम्बक ने सोचा—क्या हो गया । मैं भी झुका दूगा अब नल महाराज ने अपनी भुजा ऊपर उठाई। उसने बहुत कोशिश की, पर भुजा नही झुकी। जब वह दोनो हाथो से खीचने लगा तो लटक गया। नल महाराज ने कहा—तुम्हारी शक्ति कमजोर है।

कदम्बक महाराज ने सोचा—मैं सत्ता, सम्पत्ति और परिग्रह मे लिप्त रहते—रहते आत्मशक्ति से कमजोर रहा हूँ। अब मुझे वह कमजोरी समाप्त करनी है। मैं इन महाराजा से जीतने वाला नही हूँ।

ऐसा विचार कर वह नल महाराजा ने नेत्रो से छिपकर एक तरफ भागता है और वहा जाकर साधु का वेष पहनकर एक वृक्ष के नीचे बैठ जाता है उधर नल महाराज सोचने लगे—यह क्या तमाशा हो गया ? वह कहा गया ? कहीं दिखाई नहीं दे रहा है ? उसकी सेना विदा होने लगी। नल ने देखा—कही छिपकर उपद्रव न कर बैठे, इसलिए वे उसके पदचिह्नो पर चलते—चलते वहा तक जा पहुँचे जहा वह साधु वेष बनाये बैठा था। नल महाराज ने सोचा—क्या, वस्तुत ही इन्होने अपने जीवन को साधुत्व मे ढाल दिया है। क्या यह सच्चा साधु बना है ? अगर सच्चा साधु बना है तो मैं क्षमा माग लेता हूँ। इस दृष्टि से तो ये जीते, मैं हारा हू। मैंने शारीरिक बल से इन्हे हरा दिया, सैन्य शक्ति से भी हरा देता, पर मोह माया को छोडकर भगवान् के चरणो मे अर्पित गया तो मैं इनके चरणो मे झुकने तैयार हूँ।

कदम्बक ने कहा—मेरा ससार के पदार्थो मे मोह था इसी से मेरी उद्ण्डता चल रही थी। मुझे अभिमान था। मैं आपसे जीत नहीं पाया। तब सोचा—अपने जीवन को खराब करने की बजाय मुनि

बनकर भगवान् के चरणो मे आत्मा की अर्पण कर दू। अच्छा होगा।

नल महाराज ने कहा–अपने हृदय से आत्म–अर्पण प्रभु के चरणो मे कर दी तो आपके चरणो मे हजारो–नमस्कार है। नल महाराज कदम्बक को नमस्कार करके उनके पुत्र जयशक्ति का राज्याभिषेक करके अपने स्थान पर आते हैं। दुष्टमति कहने लगा–आप कैसे वीर है जो जीते हुए राज्य को ठुकरा रहे हैं ? यह क्षत्रियो का धर्म नही। मगर महाराज नल ने इस बात पर ध्यान नही दिया।

उधर कदम्बक अपनी आत्मिक शक्ति को श्रुत–चारित्र धर्म स्वरूप प्रभु के चरणो मे अर्पण कर देता है।

देखा आपने अर्पण करना कैसे होता है ? आप समझ गए होगे कि भगवान् के चरण कैसे होते है ?

सुमति चरण रज आतम अर्पणा,
दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी।

जो दर्पण के समान श्रुत और चारित्र धर्म मे अर्पण कर देता है वह त्रिकाल विजयी हो जाता है उसकी भय, मैथुन आदि सज्ञाऐ समाप्त हो जाती है। क्रोध मान माया लोभ की पर्याये, जो जीवन को बर्बाद करने वाली हैं, दूर हट जाती है।

आप भगवान् के चरणो मे अपनी अर्पणा के लिए आरुढ होइये। यदि आप प्रभु के चरणो मे अर्पणा कर देगे तो आपकी विकार–विभाव जन्य सज्ञाएँ समाप्त हो जाएँगी और आप वास्तविक सुख–शान्ति पा सकेगे।

इसी भावना के साथ

❀❀❀❀❀

8

तृष्णा की आग

अभिनन्दन जिनदर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव,
मत मत भेदे रे जो जइ पूछिये, सहु थापे अहमेव ।। 1।।
दर्शन दर्शन रटतो जो फरु तो रण रोझ समान,
जेहने पिपासा हो अमृत पाननी, किम माँजे विषपान।
तरस न आवे हो मरण जीवन तणो, सीजे जो दर्शन काज,
दरिशण दुर्लभ सुलभ कृपा थकी, आनन्द घन महाराज ।। 2।।

ये प्रभु अभिनन्दन भगवान की प्रार्थना की कडिया हैं। इन कडियो को धीरे–धीरे आगे बढता हुआ मैं आज अन्तिम कडी का भी उच्चारण कर पाया। इन कडियो का उच्चारण तो कभी भी किया जा सकता है। शब्द से भगवान् को पुकारना, स्तुति से भगवान् को सम्बोधन करना, माला से जाप करना यह अति सुन्दर कार्य हे। यह कार्य आसान भी है। इसमे ज्यादा कष्ट नहीं करना पडता। जिह्वा को थोडा आदेश दिया तो बस जिह्वा बोलती रहती है–अभिनन्दन भगवान् अभिनन्दन भगवान् । नाम रटने मे तो कोई मुश्किल नही हे। यह तो जैसे मशीन चलती है वैसे चलती रह सकती हे।

एक व्यक्ति पखा चलाने के लिए जैसे एक बटन दबा देता है तो पखा चलता रहता है फोनोग्राफ का भी प्राय यही हाल है। एक बार चूडी लगा दी तो जब तक उसमे शब्दवर्गणा के परमाणु भरे हुए हैं, वह बोलती रहेगी। पखे का बटन दबाने वाला फोनोग्राफ की चूड़ी घुमाने वाला इन्सान है अर्थात् प्रयत्न मनुष्य का है । वह उस बटन

को दबाकर दूसरी तरफ कार्य करने लग जाता है। वैसे ही इस शरीर के अन्दर मुह भी एक प्रकार का यत्र है। इस मुह के यत्र को मन थोडा सा चला देता है तो मुह उच्चारण करता रहता है। मुह शब्द रटता रहेगा किन्तु मन किधर है ? कहा गया ? क्या तमाशा करता है ? इसका कोई पता नही। जैसे कोई मशीन को घुमा कर दूसरा–दूसरा कार्य करते रहते हैं। वैसे ही मन मुह को शब्द को उच्चारण करने के लिए कहकर इधर उधर डोलता रहता है। कही आपका मन भी तो इधर उधर नही घूमता है ? वह इधर–उधर भटकता है। मुख प्रभु के नाम का उच्चारण करता है लेकिन उस उच्चारण के समय मन प्राय स्थिर नही है। वह घूमता है। भटकता है। इसके भी कुछ कारण हैं। वे कारण कई भागो मे विभक्त है। उन कारणो मे से वर्तमान की कई विषम समस्याएँ भी सम्मिलित है उन विषम समस्याओ के कारण मन अधिक विचलित बन जाता है और उस विचलित अवस्था को देखकर कभी तुकबन्दिया भी प्रचलित हो जाती है–

माला तो कर मे फिरे, जीभ फिरे मुख माय।
मनडो तो चउ दिस फिरे, यह तो सुमरण नाय।।

जीभ मुह मे चलती है, माला हाथ मे फिरती रहती है पर मन चारो तरफ चक्कर खाता रहता है। हा, इतना तो अवश्य है कि माला हाथ मे है, मुह से उच्चारण है तो इसके पीछे कुछ मन का सकेत भी है। वह कार्य उसी ढग से बनता है जैसे मैने सकेत दिया। कवि कह रहा है –

दर्शन–दर्शन रटतो जो फिरु, तो रण रोझ समान।

भगवान् ! ऐसे दर्शन दर्शन दर्शन रटता रहू तो यह रण रोझ के समान है। रोझ नाम एक जीवन होता है जो जगल मे रहता है। मन उसके समान प्राय बिना मतलब भटकता है। उस प्रभु दर्शन के लिए तो–

जेहने पिपासा हो अमृतपानकी, किम भाजे विषपान ?

प्रभु के दर्शन की रट किसलिये ? क्या किसी कामना की पूर्ति के लिये भगवान् का स्मरण किया जाता है ? भगवान् के दर्शन का ध्यान शब्द की रट लगाने के लिए नही। वह तो अन्दर की प्यास

बुझाने के लिए है।

मनुष्य को बहुत जबरदस्त प्यास लगी हुई है । वह प्यास वास्तविक शान्ति की है। मानव चाहता है कि मुझे दिव्य शान्ति प्राप्त हो जिसके मिल जाने पर फिर कभी अशान्ति नहीं मिले। शारीरिक अशान्ति तो दूर रही, कभी गर्म हवा भी न लगे। ऐसी–ऐसी अन्त करण की प्यास हर आत्मा को लगी रहती है। उस प्यास को बुझाने के लिए मनुष्य हर प्रकार का प्रयत्न करता है। मनुष्य का लक्ष्य बना हुआ है कि उसे सुख शान्ति मिले। चाहे वह गृहस्थाश्रम की दृष्टि से है या मुनि की दृष्टि से है, उसका प्रयत्न तो शान्ति का चल रहा है। उसे वह शान्ति का तत्त्व मिल नहीं रहा है यह दूसरी बात है। उसे मालूम हो जाय कि इस तरह से कार्य करने मे सुख मिलेगा तो वह उसी रास्ते मे लग जाता है। परिवार वालो ने शिक्षा दे दी। वह इस बात को अन्त करण मे पकड लेता है और हर क्षण सोचता है कि मैं पैसा कैसे उपार्जन करू ? कैसे पैसा अर्जन करने मे सफल बनू ? वह चाहे छल कपट धूर्तता भी करेगा। पर पैसा कमाने की कोशिश करेगा। क्योकि परिवार वालो ने उसे यह शिक्षा प्रारम्भ से ही दे दी । अतएव वह पैसे के पीछे दौडता है।

अगर उसको यह मालूम हो जाय कि भगवान के दर्शन की रट लगाने से मुझे वास्तविक सुखशान्ति मिलेगी तो वह उसी के पीछे लग जायगा और भगवान के नाम की रट लगा लेगा। लेकिन बिना सम्यग्ज्ञान के जो भी क्रियाए की जाती हैं वे वास्तविक आत्मिक शान्ति रूपी प्यास को बुझाने मे अमृत का पान न बन कर विषपान सा बन जाती हैं। अमृत की प्यास विष से कैसे बुझ सकती है ? क्या मैं कह रहा हू इसी कारण आप इसे स्वीकार कर रहे हैं या आप भी ऐसा ही अनुभव कर रहे हैं ?

आप और दृष्टि से न सोचे। अपने अन्दर की कसौटी से सोचिये कि मिथ्याज्ञान के साथ रट लगाने से क्या कोई प्रभु के दर्शन कर पायेगा ? हृदय की तृप्ति उस रट से हो जायेगी ? आप जरा दिल से सोचिये क्या उसमे सुखशान्ति का सचार हो जाएगा ? इस प्रकार की माला फेरते–फेरते चाहे कितना ही समय बीत जाय फिर

भी वास्तविक सुख शान्ति मिलने वाली नही है। ऐसी माला फेरने वाले बहुत है। प्रभु की रट लगाते–लगाते काफी समय हो गया। इतनी रटे लगाई तो क्या एक घटे भर का भी वास्तविक सुख मिला ? नहीं मिला। वह वास्तविक सुख क्यो नही मिला ? वह दिव्य शान्ति प्राप्त क्यो नही हुई ? इसका कारण क्या है ?

जब रसोई की सामग्री है और उसे बनाने वाला भी है तो रसोई बनेगी। उसे खाया जायेगा तो भूख मिटेगी। यदि भूख नही मिटती है तो सोचना होगा–या तो जठराग्नि मे गडबड है, या रोटी मे तथ्य नही है। एक व्यक्ति को प्यास लगी। वह पानी पीता है। एक गिलास पी गया, दो गिलास पी गया। तो एक गिलास से कुछ प्यास तो शान्त होनी चाहिये। फिर पानी मिल जाय तो प्यास बुझनी चाहिये। लेकिन वह दस गिलास पानी पी जाय फिर भी प्यास नही बुझे तो समझना चाहिये कि वह प्यास सच्ची नही थी। अथवा पानी के नाम से जो पी रहा है वह तत्त्व पानी नही, पानी के नाम से दूसरा तत्त्व है। यह तथ्य व्यक्ति स्वय के अनुभव से समझ सकता है। एक वैद्य बीमारी दूर करने का प्रयत्न करता है। यदि दिल मे थोडा शान्ति का सचार होता है, मन मे कुछ तसल्ली आती है तो समझना चाहिये वह उपचार कुछ ठीक है।

आज का मनुष्य ज्यादा पैसे के पीछे दौडता है पर उससे तृप्ति नही होगी। एक व्यक्ति को पूछो कि तुझे कितने मे तृप्ति होगी ? दस हजार दे दिया जाए तो हो जायगी तृप्ति ? पच्चीस हजार से ? लाख से ? दस लाख से ? उसे दस लाख भी दे दिया तो भी तृप्ति कहा ? मनुष्य सोचता है–बस इतना कमा लू तो इतनी सम्पत्ति इकट्ठी हो जायगी, फिर बैठकर धर्म–ध्यान करूगा। वह गृहस्थाश्रम मे रह रहा है। उसमे कितना इकट्ठा करना है ? शायद अभी तो आप बोलने मे अटक जायेगे। एकान्त का प्रसग हो तो और आपसे पूछ लू कितना चाहिये ? तो क्या बतायेगे ? इस तृष्णा का कभी अन्त आने वाला नही है। इस पैसे से वास्तविक प्यास बुझने वाली नही है। यह सम्पत्ति स्थायी सुख–शान्ति दे नही सकती।

नमिराज ऋषि के सामने इन्द्र आकर खडा हुआ। कई तरह

के प्रश्न किये। उनमे से एक प्रश्न का आशय यह था कि राजन् ! आज आप साधु कैसे बन गये ? आपको तो बहुतेरे भडार भरने थे। जरा बच्चो के लिए भडार भरके साधु बनते। पर पहले ही साधु कैसे बन गये ?

उस समय नमिराज ऋषि मुनि के रूप मे उत्तर देते हैं –

सुवण्णरूप्पस्स उपव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असखया,
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किचि, इच्छा हुआगाससमा अणन्तिया।

इन्द्र ! मैं सम्पत्ति बटोर कर एकत्रित करता रहता तो भी क्या होता ? हजारो, लाखो, करोडो की सम्पत्ति ही नहीं, सुमेरु सरीखे पर्वत भी एक दो नहीं, असख्य एकत्रित हो जाते तो भी मन मे तृप्ति नही आती। तृष्णा व्यक्त रहती, बनी रहती क्योकि तृष्णा अनन्त है, असीम है, शान्त होने वाली नहीं है। इच्छा आकाश के समान असीम है। आकाश का अन्त पाने का यदि कोई प्रयास करे तो वह पा नही पाता। आज के वैज्ञानिक कदाचित् ओपोलो मे बैठकर उडे और आकाश मे कितने ही हजार लाख, कोस चले भी जावे लेकिन उससे भी आकाश का अन्त पाना शक्य नहीं है। जैसे आकाश का अन्त नही आता, वैसे ही तृष्णा का अन्त नही आता।

तृष्णा की प्यास बुझाने के लिए कोई बाह्य औषधि नही है। उस प्यास को बुझानी है तो सन्तोषवृत्ति लानी होगी। अप्रत्याख्यानावरण चौक के क्षयोपशमादि होने पर श्रावक बनने का प्रसग आता है और वह फिर आगे प्रगति करता है। प्रत्याख्यान से आश्रवद्वार का निरोध होता है। आगे बताया–

पच्चखाणेण भन्ते ! जीवे कि जणयइ ?

आसवदाराइ निरुभइ पच्चखाणेण इच्छानिरोह जणयइ, इच्छानिरोह गए य ण जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीईभूए विहरई

उ सू अ 29

पच्चखाण से इच्छा का निरोध होता है, तृष्णा का मरण होता है। इसका निरोध हो जाने पर यह आत्मा तृष्णा की पूर्ति के लिए दोडेगी नहीं, उसका तृष्णा मिट जायगी। तृष्णा मिटानी है तो क्या करो ? इन्द्रियो का निरोध करो। अगर इन्द्रियो को विषय–वासना की

तरफ जाने से रोका तो आत्मा की तुष्टि की ओर बढा जा सकता है। वहा कुछ शान्ति का सचार होगा।

वह कला लाने के लिए श्रावक व्रत और साधुव्रत का नक्शा है। इन अवस्थाओ को पाने के लिये इन्द्रिय निरोध आवश्यक है। लेकिन जो इन्सान इन्द्रियो का निरोध नही करता, उसके जीवन मे अमृत का सचार नही होता। उसे वास्तविक सुख–शान्ति नही मिल पाती। फिर चाहे वह गृहस्थाश्रम मे रह रहा है, चाहे साधु की स्थिति मे रह रहा है। साधु बन जाने के बाद भी मानसिक रूप से इच्छा भडकी रही, तो भी वह सुख–शान्ति पा नही सकेगा। वह कौनसी इच्छा ? यह कि मैं साधु बना हू, लोग मेरे चरणो मे अधिक से अधिक आकर पडे, अधिक धन्यवाद दे, मेरा जयनाद करे, मेरी यश–कीर्ति बढे, बडे–बडे नेता मेरे पास पहुचे, मेरी ख्याति चहुँ ओर हो। दुनिया मे मै ही मै बडा कहलाऊ। ऐसी अगर साधु की भावना है तो फिर वहा भी समझना चाहिये कि इच्छा का निरोध नही हुआ है केवल इच्छा मे रूपान्तर आ गया है। इसलिये साधु जीवन का पश्चात् भी अमृतपान करने की दृष्टि से मन मे इस प्रकार भावना नही आनी चाहिये। अगर कोई चरणो मे नमस्कार करता है तो साधु को चाहिये कि वह फूले नही। जरा भी अभिमान की मात्रा मन मे नही लावे। अगर ले आया तो वह साधु कर्म का बध कर लेगा। वन्दन करने वाले के तो निर्जरा होगी, पर अभिमान करने वाले साधु के कर्मबध होगे। अभिमान मीठा जहर है।

अगर कोई क्रोधित होकर आक्रोशकारी शब्द वोल दे तो उस समय भी साधु को समभाव के साथ रहना चाहिये। उसके प्रति मन मे ऊचे नीचे भाव नही लाना चाहिये। साधु मन मे यह भावना न करे कि मुझे अधिक से अधिक लोग वन्दन करे। उसे निरन्तर यही ध्यान रखना चाहिए कि मे जिस उद्देश्य के लिए साधु वना हूँ उसे पूरा करू। वह मानसिक वृत्तियो पर विजय प्राप्त करने के लिए साधु वना हू। वन्दन करने वाला भी यही सोचे कि मे इन महापुरुषो को वन्दन कर रहा हूँ सो यह इनका नही, इनके त्याग तप रूप सयममय जीवन का गुणा का सत्कार–सम्मान हे। इन गुणा के कारण ये महापुरुष

वन्दनीय है। मैं इनको वन्दना करूगा तो मेरे कर्मो की निर्जरा भी होगी।

कभी–कभी मेरे भाई सोचते हैं–मैं विधियुक्त वन्दन करूगा तो महाराज मुझ पर खुश हो जायेगे। मैं कहूगा–महाराज खुश हो या नही, किन्तु तुम महाराज को खुश करने के लिए नही, निर्जरार्थ कर्तव्य निभाने के लिए वन्दन करो। सन्तो को वन्दन इसलिए किया जा रहा है कि वे ससार की मोह–माया को छोडकर सन्त बने हैं, सर्वस्व के त्यागी महात्मा बने हैं तो मेरा जीवन भी, जो अति तृष्णा की ओर जा रहा है, मैं भी उनके गुणो का अनुमोदन कर प्रेरणा लू। ऐसी भावना के साथ वन्दन करने से महान् लाभ वन्दन करने वाले को होता है। साधु को तो अपनी स्थिति पर कायम रह कर चलना चाहिये। उसे वन्दना की तृष्णा नहीं रखनी चाहिये।

उनके साथ आप भी अपनी श्रावकवृत्ति से आत्म–कल्याणार्थ चले। बढा चढाकर मन मे तृष्णा को स्थान नही दे। जो महा इच्छा का परित्याग नहीं करके इच्छा को बढाता रहता है उसकी स्थिति को ख्याल मे रखिये। यह स्थिति कितनी दु खदायी होती है।

आप अमृतपान करना चाहते हैं, अमृतपान करे, पर तृप्ति आनी चाहिये। पर ध्यान रखिये कहीं उस अमृत के साथ विष का पुट तो नहीं लगा है ? जिस इन्सान को इस विज्ञान का पूरा ज्ञान नही होता वह किधर कहा चला जाता है कहा नहीं जा सकता। वर्तमान मे भी नक्शे बनते रहते हैं। प्राचीन काल मे भी ऐसे नक्शे बने हैं।

बन्धुओ ! कथाभाग का वह प्राचीनकाल का नक्शा आपके सामने चल रहा है। नल राजकुमार दमयन्ती के साथ विवाहित होकर अपने स्थान पर पहुच गये। दमयन्ती सबके साथ प्रेम कर रही थी। उसमे अतितृष्णा नहीं थी, सन्तोष वृत्ति थी इसलिए जनता उसके प्रति आकर्षित थी। जनता चाहती थी कि हमारे महाराज चाहे नल हो पर महाराज की अपेक्षा से महाराणी दमयन्ती हमारी स्वामिनी है।

दमयन्ती के साथ–साथ नल की भी इज्जत बढ गई। यह कार्य उनके सद्गुणो से बन रहा है। उन्होने अपने पर अकुश लगाया और सन्तोषवृत्ति के साथ सद्गुणो को लेकर आगे बढे तो जनता का

सहज आकर्षण हो गया।

लेकिन इस घर मे जन्म लेने वाले नल के छोटे भाई कुबेर के मन मे डाह पैदा हो गई। डाह यानी जलन। वह जिधर देखता सुनता उधर ही नल की तारीफ, उन्ही के गुणगान, उन्ही का स्वागत सत्कार । और वह सोचता–मेरा कही नाम नही। भाई साहब जिधर इशारा करते है हजारो हजार हाथ लग जाते हैं, जिधर भाई साहब बोलते है उधर अनेको के कान की खिडकिया खुलकर सुनने को तैयार हो जाती है। पर मुझे कोई पूछता तक नही। मै भी उनका भाई हू। मुझ मे क्या कमी है ? फिर लोग मेरी ओर जरा भी आकर्षित क्यो नही ? वह इसी जलन से जला जा रहा था। सोचा, भाई का यह नाम रोशन जो हुआ दमयन्ती के कारण से हुआ। जब से दमयन्ती आई है, उनकी इज्जत बढ गई। यदि दमयन्ती नही होती तो भाई से ज्यादा मेरा नाम होता। वह नल क्या समझता है ? वह तो धर्म भीरु है, धर्म–धर्म की बाते करता है। डरपोक है, कायर है, बुझदिल है। पर अब क्या करना चाहिये ?

उसके चित्त मे तृष्णा का भूत सवार हो गया। दमयन्ती के कारण भाई की शोभा है। वह भौजाई भी कितनी होशियार है, कि उसने अपने पति के लिए कैसा सुन्दर मार्ग निर्माण कर दिया है । यह बडा दु खी हो गया।

उसकी यह चिन्ता बढी और वह उन्ही विचारो मे डूबने लगा। उसे राजभवन मे खाने, पीने, पहनने ओढने की कमी नही थी। वहा किस चीज की कमी थी ? पर उसे मानसिक दृष्टि से रोग लग गया था। इस रोग से जो पीडित होते है उनकी भूख स्वत वन्द हो जाती हे, कमजोरी महसूस होने लगती है। अव वह कुवेर दोस्तो के साथ भी घूमने निकलता तो कहता–मै क्या करू ? मेरे शरीर मे ताकत नहीं रही। मुझे भूख नहीं लगती। यह सब क्या हो गया ?

दोस्त कहते हैं–हम वैद्य के पास ले चले। वेद्य से उपचार करवा दे। वेद्य वुलाये भी गये पर किसी का उपचार लगा नहीं। डॉक्टरो के पास साधन क्या ? वाहर से एक्सरे ले लिया, अवयवो की तपास करली टट्टी, पेशाव की जानकारी कर ली डॉक्टरो ओर वेद्यो

ने देख कर कहा–इनको शरीरिक कोई रोग नही है। दोस्तो ने कहा–रोग नहीं है तो फिर भूख क्यो नही लगती ? दिनो दिन कमजोर क्यो हो रहे हैं ? सब हैरान थे पर इलाज क्या करे जब कि रोग का ही पता नही। आखिर दोस्त भी धीरे–धीरे खिसकने लगे। वे कहने लगे देखो दोस्त, हम भी नल के साथ रहना चाहते है क्योकि उनक साथ तो हमारा भी सत्कार होता है। आपके साथ रहने मे तो अब कोई मजा नहीं है।

मानसिक रोग कैसे मन मे प्रवेश करता है। यह इस कथाभाग से जाना जा सकता है। आप लोगो को भी सोचना है कि इस प्रकार का रोग हम मे तो नही है ?

मानसिक रोग के बीमार आज बहुत मिलेगे। शरीर की दृष्टि से रोगी होगे तो चिकित्सा भी शीघ्र हो जाती है, पर मानसिक रोग की चिकित्सा कम होती है। तो वे दोस्त भी धीरे–धीरे कुबेर के पास से खिसकने लगे। इससे वह और घबरा गया। एक जलन तो यह कि भाई का इतना नाम क्यो ? दूसरी जलन यह कि दोस्त लोग भी अब किनारा करते जा रहे है।

इतने मे उस नगर मे एक मनोविज्ञानवेत्ता डॉक्टर आ गया। कुबेर के एक मित्र ने सोचा–मेरा दोस्त तकलीफ मे है और मानसिक डॉक्टर यहा आया हुआ है तो मुझे प्रयास करके दोस्त का इलाज करवाना चाहिये। उसने डॉक्टर से कहा–आप चलकर हमारे राजकुमार के रोग का निदान कीजिये। वह दोस्त डॉक्टर को लेकर राजभवन मे कुबेर के कमरे मे पहुँचा। डॉक्टर ने उसकी परीक्षा की और कुछ जीवन की घटनाए पूछी। फिर परिणाम घोषित किया। डॉक्टर ने कहा–इनके बाहर के रोग का प्रसग नही है। मनोविज्ञान वाले मानसिक रोग का निदान जीवन की चर्या से करते है। और उससे ही मैं निदान कर पाया हूँ कि इनका मानसिक रोग अधिक बढ गया है अत शान्त होने का उपाय नहीं है। फिर भी वह दोस्त से कहने लगा–देखो भाई, अगर इन्हे तन्दुरुस्त करना चाहते हो तो इन्हे यह समझाओ कि इनके भाई के पास यह जो सत्ता, सम्पत्ति, मान, अधिकार और स्वामित्व है वह कि न किसी पूर्व जन्म की पुण्यवानी से है अत

उनसे ईर्ष्या न करे। दोस्तो ने उसे समझाया भी कि नल महाराज को जो समृद्धि एव कीर्ति मिली है वह पुण्योदय के कारण मिली है। इनका वर्तमान जीवन भी अच्छा है पूर्व जन्म की पुण्यवानी के उदय का भी प्रसग है। इसलिए आप उनसे ईर्ष्या की भावना मत रखो। आपको पता नही कि मुनिराज ने बताया है कि दमयन्ती और नल कई जन्मो से धर्म करनी करते आ रहे है और उसी पुण्य के सयोग से उनका नाम है, ख्याति है, यश है। इसलिए अब आप उनके प्रति समभाव रखिये। ईर्ष्या करना छोड दीजिये।

मनुष्य चाहे तो अपना जीवन निर्माण भी कर सकता है और उसे बर्बाद भी कर सकता है। मित्रजन कुबेर को समझाने का प्रयत्न कर रहे थे पर उसकी समझ मे नही आ रहा था। उसकी बीमारी गहरी होती गई।

मानसिक चिकित्सा करने वाले डॉक्टर के इलाज से विशेष कामयाबी नही हुई, पर कुबेर ने निर्णय जरूर कर लिया कि भई साहब के लिए कोई उपाय तो ढूढना ही चाहिये। डॉक्टर के चले जाने पर स्वार्थ वृत्ति को लेकर एक व्यक्ति कुबेर के पास पहुँचा। वह बडा नम्र बना और कहने लगा–आपका जीवन मुरझा रहा है। क्या बात है ?

कुबेर ने कहा–मेरा दिमाग भी काम नही करता, मै क्या करू ?

दृष्टमति बडा चालाक था। उसने रोग का निदान पा लिया और कहा–राजकुमार, मै आपके रोग का पूरा इलाज कर सकता हू। वह ठेका ले लेता है। वह कहता है–राजकुमार, मैं आपके रोग की स्थिति समझ रहा हूँ। उसे मिटाने का उपाय मैं कर सकता हूँ। नल राजकुमार की जो शक्ति है, वैभव है, यशकीर्ति है, वह सारी की सारी आपके चरणो मे उडेल दूगा। इतनी देर तक उसका मस्तिष्क अस्त–व्यस्त था। वह थोडा एकाग्र होकर बोला–ऐसी बात हो सकती है ?

वह दुष्टमति बोला–अवश्य। मुझे समय मिलना चाहिये और खर्चा मिलना चाहिये।

कुबेर बोला–तुम फ्रिक मत करो। मेरे अधिकार मे बगले जमीन जायदाद लाखो की है। अगर यह प्रयास कर दोगे तो दस लाख रुपये दे दूगा। यदि मेरे बडे भाई का यश, सन्मान एव राज्य मुझे मिल जाय। मैं राजा बन गया तो उसे दर भटका दूगा।

देखो बन्धुओ ! ससार का क्या नक्शा है ? क्या भावना है ? क्या यह बुद्धि का दुरुपयोग नही है ? यह आत्मा के पतन का रास्ता है।

उस व्यक्ति के साथ कुबेर ने साठ गाठ कर ली और उससे प्रतिज्ञा करवा ली। अब वह दुष्टमति वहा से चलकर नल महाराज के पास जाकर विनयभाव के साथ निवेदन करने लगा। उनका जयनाद किया, विरुदावलि गाई और उनके पास बैठकर कहने लगा–मैं आपके चरणो की सेवा करना चाहता हूँ। आप महान भाग्यशाली, राजाधिपति राजा हैं। आपने कैसी पुण्यवानी प्राप्त की और पत्नी का भी कैसा सुन्दर सयोग मिला कि कुछ कहा नही जाता । मैंने सोचा–ऐसे महापुरुष के पास जाकर दर्शन और सेवा करके जीवन धन्य बनाऊ।

महात्मा मन वचन और कर्म से एक लक्षण वाले होते हैं जब कि दुरात्मा के मन मे कुछ और होता है, वह बोलता है कुछ और ही है। वह दुष्टमति ऊपर से बडा विनयशील बन रहा है, भक्तिभाव पूर्वक उनकी सेवा कर रहा है, बनावटी बाते रख रहा है। पर अन्दर मे कुछ दूसरे ही विचार थे। नल महाराज भद्र सरल स्वभावी थे। वे नही समझे कि वह छल के साथ कहता है। उन्होने उसे कर्तव्यनिष्ठ, सेवाभावी समझा। कहा–कोई बात नही यहा रहना चाहते हो तो रह सकते हो।

अब वह जब–जब वार्तालाप आदि का प्रसग आता तो कुबेर मे कुछ भी अकल नही, वह आपसे ईर्ष्या रखता है। वह दुरात्मा है, इस तरह से वह नल राजा के सामने कुबेर की अनेक प्रकार से निन्दा करता रहता। नल को उसके प्रति कुछ विश्वास भी होने लगा कि यह मेरे लिए कितना अच्छा सोचता है। और कुबेर जैसा है वैसा ही बता रहा हे।

वह महाराज नल की ही आज्ञा को शिरोधार्य करके जलने लगा। ऐसे कार्य करते देख नल ने सोचा–यह ईमानदार व्यक्ति है। उसे अपने पास ही रखना चाहिये। नल ने उसे विश्वासपात्र समझा और वह अपना काम बढाता रहा। जब कभी घूमने जाते तो उसे भी रथ मे बैठाकर निकलते। वह कुबेर प्रसग पाकर निन्दा करता है। उसके मुह मे मीठास है, अन्दर मे जहर है। एक रोज का नक्शा कुछ और ही बनता है।

दुष्टमति ने सोचा–अब महाराज के मन मे मेरे प्रति विश्वास तो पैदा हो गया पर मेरा काम कैसे बनेगा ? उसने षड्यन्त्र रचा। सोचा–जब तक इनके ज्ञानतन्तु सबल रहेगे तब तक मेरी दाल नही गलेगी। इसलिए इनकी ज्ञानशक्ति को कुण्ठित करना चाहिये। वह नल महाराजा से कहने लगा–आप राजाधिपति राजा हैं। आपके पास बहुत काम है, कितनी जिम्मेदारी है। इसलिए मस्तिष्क की शान्ति के लिए कुछ कार्य करना चाहिये। नल कहता है–मेरा मस्तिष्क तो ठीक है। तब वह कहता है–नही, नही महाराज, हम आपको बहुत काल तक देखना चाहते है। इसके लिए पूरी नीद आनी चाहिये, विश्रान्ति के लिए थोडा नशा भी ले लेना चाहिये।

मे आजकल कई भाइयो के मुह से सुनता हू। वे कहते है–महाराज, थकान आ जाती है इसलिए थोडा नशा लेते है। परन्तु नशे से क्या होता है ? उससे आदमी कमजोर और एक प्रकार से शून्य बन जाता है। आगे चलकर शरीर की नसे ढीली पड जाती हैं। आज अधिकाश भाइयो की स्थिति डावाडोल क्यो हो रही है ? डॉक्टर भी जल्दी से विश्रान्ति के लिए इन्जेक्शन दे देगे ओर सुला देगे। इस प्रकार नशा का सेवन करते रहने से मनुष्य जीवन कभी–कभी खतरे मे पड जाता हे।

धमतरी के पास एक भाई का मोटर सायकल से एक्सीडेन्ट हो गया ओर उसे मूर्छा आ गई। वहा पास मे ही हास्पिटल था। वहा उसे भर्ती किया गया। छोटे डॉक्टर थे। उन्होने विश्रान्ति के लिए नशे का इन्जेक्शन दे देना चाहिये, ऐसा सोचकर इन्जेक्शन दे दिया। पर इन्जेक्शन कब कितना ओर किस मात्रा मे देना चाहिये, इसका छोटे

डॉक्टरो को पूरा विज्ञान न होने से यह देना ठीक है या वो ठीक, इसकी तरफ उनका ध्यान विशेष नही रहता है और इन्जेक्शन दे देते हैं। उस डॉक्टर ने इन्जेक्शन दिया जिससे वह सोया का सोया रह गया।

कल एक सज्जन कह रहे थे कि एक विद्यार्थी की स्थिति भी ऐसी बन गई। जहा विवेकवान् डॉक्टर है वहा तो जीवनरक्षा हो जाती है नहीं तो जीवन खतरे मे भी पड सकता है।

हा, तो मैं कह रहा था कि वह दुष्टमति सोच रहा था कि मे अगर नल महाराजा के जीवन को कमजोर नहीं करूगा तो मेरे हाथ कुछ भी आने वाला नही है। उसने कहा—विश्रान्ति के लिए कुछ नशे का सेवन करना चाहिये जिससे नींद अच्छी आवे।

नल ने सोचा—यह दिन—रात मेरी सेवा करता है तो मेरे हित मे ही कहता है। नल उसके चक्कर मे आ गए। दुष्टमति पहले तो थोडी मात्रा मे नशा देने लगा और नल महाराज लेने लग गये। फिर कहने लगा—महाराज यह जीवन बार—बार मिलने वाला नही है। आप किस धर्मकथा के चक्र मे पड गये हैं। किसने स्वर्ग देखा है ? आप तो अपने वर्तमान जीवन की तरफ देखो।

अब नल के जीवन मे सत्सगति का सयोग कम होने लगा। उसके मस्तिष्क मे रात—दिन वह दुष्टमति कुव्यसनो की भावना भरने लगा। नल महाराज भी दुष्टमति की सगति से लापरवाह हो जाते है।

बन्धुओ ! जरा सोचना है। आज मेरे भाइयो को प्राय कैसा वातावरण मिल रहा है ? क्या उनका जीवन दुष्टमतियो के ससर्ग मे ज्यादा रह रहा है या सुज्ञ पुरुषो के ? आज भाइयो को यह कहने वाले तो बहुत मिल जायेगे कि धर्म मे क्या रखा है ? यह सब ढोग है, महापुरुषो की बाते बेकार है। इस प्रकार की बाते कहकर वे विषयवासना और भौतिक सुख—सुविधा की ओर मनुष्यो को ले जाना चाहते हैं। कई पुरुष उनकी बातो में सहज ही आ जाते हैं।

मैं आपको क्या बताऊँ ? कथाभाग की स्थिति तो वहा की है पर ऐसी स्थितिया आज आपके यहा भी कुछ मोजूद होगी ? आज इस प्रकार की चल रही कुसगति को मिटाने के लिए सुसगति की

नितान्त आवश्यकता है। सत्सगति मे दस अच्छी बाते सुनेगे तो कुछ तो जीवन मे उतरेगी।

मै आपको पूछता हूँ–आप क्या पसन्द करते हैं ? सत्सगत या कुसगत ? पसन्द तो सुसगत करते हैं। आप अपने बच्चो मे क्या सस्कार दे रहे हैं ? आपके बच्चे स्कूल और कालेजो मे क्या करते हैं ? क्या पढते हैं ? मेरे पास कई मॉ बाप आकर कहते हैं, अपना रोना रोते है–महाराज, क्या करे ? बच्चा घर मे से चोरिया करके वस्तुए ले जाता है। आप तो यही समझ रहे है कि हम बच्चो को स्कूल भेज रहे है और सब कुछ अच्छा हो रहा है। स्कूल कालेजो मे भेज देगे, रुपया मागोगे तो देना पडेगा। पर कभी आपकी जबान से यह भी कहा जाता है कि हम रुपया तक देगे जब तू घडी भर धर्मसाधना के लिए सत्सगति के लिये जायेगा। क्या ऐसे सस्कार आप देते हैं ? आप खुले मे नही कह सकते ? अपने–अपने दिल मे सोच लीजिये। पर इसका नतीजा क्या होने वाला है यह भी ख्याल कर लीजिये।

मनुष्य जब दुर्गति की तरफ बढ जाता है, नशा का सेवन करने लग जाता है तो कुसगत कहा ले जाकर गिराती है ? यह कथा भाग मे भी देखते जाइये। महाराज नल के मन मे पहले क्या भावना थी कि मै पाच इन्द्रियो के विषयो से अलग रहूँगा, सुसगति से जीवन का निर्वाह करूगा। पर अब वे कुसगत के कारण ससार के कुव्यसनो का सेवन करने लग गये।

अब महाराज की तृष्णा भी बढने लगी। इन्द्रियो का क्षणिक सुख ही सब कुछ दिखाई दे रहा है। एक रोज वह दुष्ट महाराज को घोर जगल मे ले गया तो वहा कुछ और ही नक्शा बना। वे रास्ता भूल गये। नल राजकुमार जगल मे थककर बैठ गये, श्रम बहुत हो गया, थकान आ गई। सोचा अब क्या करना चाहिए ? उस दुष्टमति ने उनके लिए अपने हाथो से इधर–उधर से सूखी घास एकत्रित कर शय्या बनाई और कहा–महाराज, आप थोडा विश्राम कीजिये। उनके हाथ पाव दबाये। अब महाराज को मन मे और पक्का विश्वास हो गया कि यह वडा सेवाभावी है। उन्हे प्यास लगी तो कहा–अभी पानी लाता हूँ। मे अपना जीवन देकर भी पानी ला सकता हूँ। वह पानी लाने

जाता है। नल बडे खुश हो रहे हैं। वह भी खुश हो रहा है कि मेरा काम बन रहा है। नल को भूख लग रही थी लेकिन भूख की अपेक्षा प्यास ज्यादा थी। इसलिए सोच रहे थे कि पानी आ जाने के बाद भूख मिटाने के लिए कहूँगा। महाराजा नल शान्तिपूर्वक शय्या पर सोये हुए सोच रहे हैं। वह दुष्टमति भी अपनी मनोरथ–सिद्धि के लिए इच्छानुसार अनेक तरह की कल्पना करते हुए पानी लेने जा रहा है। वह भी मन मे विश्रान्ति लेता हुआ सोच रहा है कि मेरा काम बनता जा रहा है। दोनो अपने मन के लड्डू खा रहे हैं।

आपने सामने क्या स्थिति है ? आप किस सगत मे हैं, इसका आपको विचार करना है। कहीं आप अपने जीवन के साथ खिलवाड तो नहीं कर रहे हैं ? आपको इस ओर गभीर विचार करने की आवश्यकता है।

आप अपने जीवन को सत्सगति मे जोडते हुए आगे बढने मे सत्पुरुषार्थ करेगे तो आपका कल्याण हो सकेगा।

इसी शुभ भावना के साथ

दुर्व्यसन का चंगुल

सुमति चरण रज आतम अर्पणा, दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी,
मति तर्पण बहु सम्मत जाणिये, परिसर्पण सुविचार, सुज्ञानी ।। 1।।
त्रिविध सकल तनुधर गत आतम, वहिरातम धुरि भेद, सुज्ञानी
बीजो अतर आतम तीसरो, परमातम अविच्छेद, सुज्ञानी ।। 2।।

ये प्रभु सुमतिनाथ भगवान् की प्रार्थना की कडिया हैं। इनका उच्चारण कल भी हुआ और आज भी आपके सामने आया है। भगवान के चरणो मे प्रार्थना रखी जाती है और विभिन्न नामो के साथ विभिन्न कडियो से उच्चारण भी किया जाता है। ये प्रार्थनाए कभी किसी भगवान की आती है और कभी किसी भगवान की। प्रार्थना मे कभी कम कडियो का उच्चारण होता है कभी ज्यादा कडियो का होता है। कम प्रार्थना करने से भगवान थोडे खुश होगे, ज्यादा की तो अधिक खुश होगे और प्रार्थना नही की तो भगवान् नाराज हो जायेगे ऐसी बात नही है। भगवान् के अनेक नाम है, उन अनेक नामो मे से किसी एक नाम से स्तुति कर रहा हूँ तो उस नाम वाले खुश हो जायेगे और वाकी के नाराज हो जायेगे ऐसा भी नही है। इसलिए अनेक भगवान की स्तुति न करके एक ही भगवान की स्तुति क्यो न की जाय ? अगर अनेक भगवानो की स्तुति की जायगी तो कहावत है–'सात मामा का भानजा भूखा रह जाता हे।' सात मामा का भानजा होता है तो वह मामा देखता है वे जिमायेगे, वह सोचता हे वहा जीम लिया होगा। इस प्रकार सोचने मे वह भानजा खाली पेट रह जाता हे। उसी

तरह से हम भी अनेक भगवानो की भक्ति करे तो हमारी भी वह दशा तो नहीं बनेगी ? और यदि वैसी दशा बनती हो तो हम सभी भगवान की स्तुति न करके किसी एक ही भगवान को पकड ले और उन्ही के चरणो मे तल्लीन हो जावे तो क्या वे भगवान तारेगे नहीं ?

ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है। विचारवान मनुष्य के मन मे प्रश्न पेदा होना ही चाहिये। पर प्रश्न से पहले सोचने की आवश्यकता है कि भगवान सात मामा की तरह नही है। वे निर्मल है, पवित्र है, राग द्वेष आदि विकारो से रहित और आठ कर्मो से मुक्त आदर्श तटस्थ है। वे किस अवस्था मे रहने वाले है ? आपके समान प्रकृतिया रखने वाले हैं या आपकी प्रकृतियो से भिन्न है ? आठ कर्म मामा के लगे हैं और भानजे के भी लगे हैं लेकिन ईश्वर के नही लगे है। राग द्वेष से युक्त ससार दशा का नक्शा कुछ और ही है। एक व्यक्ति की सेवा करने पर दूसरा व्यक्ति नाराज होता है और सोचता है–इसकी ज्यादा सेवा की मेरी कम की। ऐसी भावना ससारी प्राणियो की होती है। यह भावना जब तक है तब तक कोई शुद्ध ईश्वर नही बन सकता।

जहा राग द्वेष से तटस्थ रहकर समभाव होगा स्वार्थ–लिप्सा नही होगी, पक्षपात नहीं होगा, वहा सेवा की अपेक्षा नहीं होगी। भगवान् को आपकी सेवा से कोई प्रयोजन नही। वे सदा समभाव के अन्दर स्थित हैं। आप एक भगवान की स्तुति करे या अनेक भगवानो की करे या निन्दा करे लेकिन भगवान कभी तीन काल मे भी नाराज होने वाले नही हैं। उनके नाराज होने का कभी प्रसग नहीं आता। वे समभावी हैं। हमारे लिए आदर्श है। हमको प्रेरणा लेनी हे तो वह किसी भी आदर्श को सामने रखकर ली जा सकती है। यह उत्तरदायित्व मनुष्यो पर है। आप उनके आदर्श को लेकर चलेगे तो स्तुति कम हो पाई है या ज्यादा हो पाई है इसका प्रयोजन नहीं रहेगा। आप दर्पण की तरह अविकार बन जायेगे।

दर्पण जेम अविकार, सुज्ञानी।

दर्पण के अन्दर आप विकार नहीं देखते। आपके कमरे मे पचास दर्पण लगे हुए हें। उनके सामने आप जाते हे। आकृति देखकर हाथ मलते हें। उस समय आप एक ही दर्पण के सामने या सब दर्पणो

के सामने है ? एक ही दर्पण के सामाने खडे होगे तो दूसरा दर्पण नाराज हो जायगा ? पहले दर्पण के सामने खडे हो गये, फिर थोडी देर बाद दूसरे दर्पण के सामने जाकर खडे हुए तो क्या दूसरा दर्पण नाराज होगा ? दर्पण नाराज होने वाला नही है। आप जब भी उसके सामने खडे होगे अपनी आकृति देख सकेगे।

वैसे ही भगवान आदर्श रूप मे है। उनके पीछे कल्पना मत करिये कि उनकी स्तुति अधिक या कम हो गई और वे नाराज राजी हो जायेगे। राजी–नाराजी कहा है ? उसकी स्थिति अपने जीवन मे देखने की आवश्यकता है यहा बतलाया गया है –

त्रिविध सकल तनुधर गत आतम
वहिरातम धुरि भेद, सुज्ञानी।

परमात्मा से आदर्श ग्रहण कीजिये और तात्विक दृष्टि से सोचिये कि हम भगवान के बताये मार्ग पर चिन्तन कर रहे है या उनके मार्ग को छोडकर ? भौतिक दृष्टि से तत्व का अर्पण करने वाला कौन ? यह आत्मा। लेकिन आत्मा एक दृष्टि से एक है जैसे कि शास्त्र मे पाठ आया है–ठाणाग सूत्र के प्रथम अध्ययन मे आत्मा के लिए 'एगे आया' शब्द का प्रयोग हुआ है। यदि इस सूत्र के अनुसार एक ही आत्मा है तो फिर तीन आत्मा का निर्देश कैसे ? यह प्रश्न होना स्वाभाविक है। लेकिन उसी ठाणाग सूत्र की जब सग्रहनय को छोडकर अन्य नयो की दृष्टि से व्याख्या की जाती है तो आत्माए अनेक भी है। अत उन नयो का लक्ष मे रखकर आत्मा के यहा मुख्य तीन भेद किये गये है।

एक–वहिरात्मा, दूसरा अन्तरात्मा और तीसरा–परमात्मा।

वहिरात्मा किसको समझना ? जिसकी दृष्टि सर्वथा वाहर की तरफ हो वह वहिरात्मा। वाहर की दृष्टि का तात्पर्य क्या ? वाहर का [illegible] चूने पत्थर के मकान से वाहर का नही, पर जिस व्यक्ति का [illegible] अपने आत्मस्वरूप मकान मे न हो वह वाहर देखता है। उस [illegible] क्या करेगे ? उसका अपने मकान का ध्यान नहीं, वह वाहर ही [illegible] भटकता है और आप जानते है कि जो ज्यादा वाहर भटकता है [illegible] करता है। जो घर मे व्यवस्थित नही रहता वह

आवारा। उसे वहिरात्मा कहा जा सकता हैं ऐसे आत्मा का ज्ञान, विवेक शक्ति अपने घर मे नही रह कर घर से बाहर निकल जाती है। कौन से घर से ? आत्मा का घर मालूम है आपको ? आप को मिट्टी के, चूने के और पत्थर के मकान तो मालूम हैं। उन्हे आप अपना मानते हैं। लेकिन वस्तुत वह मकान आपका है क्या ? वह वस्तुत आपका मकान नहीं है ? फिर भी उसे आप अपना मकान समझ रहे हो।

आपके मकान है क्या ? किससे पूछू ? अपने वास्तविक मकान को बताने वाले कितने है ? जो मकान से बाहर निकल जाय उसे आप आवारा कहते हैं लेकिन जो आत्म स्वरूप से परे हट जाय क्या उसे आवारा कहेगे ? आज प्राय मनुष्य किधर भटक रहा है ? उसकी दृष्टि प्राय ससार के शृगार मे लगी रहती है, उसका मन ससार की विषयवासना मे दिन–रात रचा–पचा रहता है। आप दूकान पर जाते हैं तो किसलिये ? नोकरी पर जाते हैं तो किसलिये ? आप अपने परिवार के लिए कहा–कहा जाते हैं ? क्या–क्या करते है ? पर आत्मा के लिये कह देगे–हैं महाराज, समय नहीं मिलता। ससार के दूसरे–दूसरे कार्यो के लिए जितना चाहिये उतना समय निकाल लेते हैं पर आत्म–साधना के लिये समय नहीं। यह आवारापन नहीं है क्या ? यह आवारापन की स्थिति बनाई किसने ? बाहर के किसी व्यक्ति ने नहीं बनाई, स्वय ने बनाई है।

आज मानव कहा जाता है ? वह या तो तिजोरी की तरफ जायेगा सम्पत्ति बटोरने मे रहेगा या मकान, जायदाद की तरफ जायगा या लडने झगडने की तरफ जायगा कि अमुक व्यक्ति ने यह कह दिया मै उसका बदला लू। अथवा पॉच इन्द्रियो के विषयो की तरफ इच्छा दोडेगी। वह फिर रोता है। रोता क्यों है ? क्या गमी हो गई ? कोई काल कर गया ? वह रोने लगा तो किस लिये ? स्वास्थ्य के लिए या अन्य भोतिक तत्वो के लिए ? ये सब वहिरात्मा के लक्षण हैं।

आत्मा मरता नहीं पर वह दूसरा चोला पलट लेता है। शुभ काम करने पर सद्गति ओर बुरे कृत्यो से नीची गति मिलती है। भोतिक पिण्ड के पीछे भान भूलना वहिरात्मा का लक्षण है। आचाराग

सूत्र मे 'पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमसि' आदि पाठ से बतलाया गया है कि यह आत्मा किस दिशा से आया है ? कल मैंने द्रव्य दिशा के विषय मे कहा और शास्त्रपाठ का उच्चारण करके व्याख्या रखी। द्रव्य दिशा के साथ शास्त्र मे भाव दिशा बतलाई गई है। अर्थात् शास्त्रीय दृष्टिकोण से जो उठारह भाव—दिशाओ का उल्लेख है मै उन भावदिशाओ को आपके सामने रख जाता हू जिन्हे आप समझने का यत्न करे।

वे इस प्रकार है – (1) कर्मभूमिज—मनुष्य (2) अकर्मभूमिज मनुष्य (3) छप्पनद्वीप के मनुष्य (4) समूर्छिम मनुष्य, (5) पृथ्वी काय (6) जलकाय (7) अग्निकाय, (8) वायुकाय, (9) वनस्पति के अग्रबीज, (10) वनस्पतिकाय के मूल बीज (11) वनस्पतिकाय के पर्व बीज (12) वनस्पतिकाय के स्कन्द बीज, (13) बेइन्द्रिय, (14) तेइन्द्रिय, (15) चउरेन्द्रिय (16) पचेन्द्रिय (17) नरकगति (18) देव गति।

इन अठारह दिशाओ का हर किसी आत्मा को ज्ञान नही होता और हर आत्मा यह भी नही जानता कि मै किस भावदिशा से आया हूँ ? यहा आपको द्रव्यदिशाओ से नही, इन भावदिशाओ की दृष्टि से विचार करना है। लेकिन भावदिशा का विचार करना भी कब आयेगा ? जबकि आपमे आत्मा के अन्तरग रूप को देखने की क्षमता होगी। जब आत्मा मे अपने अन्तरग स्वरूप को देखने की क्षमता आ जायेगी तो फिर आत्मा के भटकने के कारणो को भी वह जान सकेगी।

मै बोलता जा रहा हू और आप मे से कुछ भाई विश्रान्ति ले रहे है। आपको प्राय इन बातो को सुनने का अभ्यास नही और फिर शास्त्रीय बातो को आप पूरी तरह से पकड भी नही पाते। इसलिए मैं भी चाहता हूँ कि आपको थोडी—थोडी खुराक दू और आप इस थोडी खुराक से अपना अभ्यास बढा सके।

जब तक इन अठारह दिशाओ का आपको ज्ञान नही होगा तब तक अन्तरात्मा की सही स्थिति भी नही जान पायेगे। यह भी एक प्रकार से प्रश्न हे। प्रश्न कई खडे होते है, कई उलझने भी आती हैं पर आप उनसे घबराइये मत। उन पर गभीरता के साथ चिन्तन—मनन

कीजिये। शास्त्रो के अध्ययन मे रुचि रखिये। शास्त्रो के मर्म को समझने की क्षमता बनाइये।

जिसका अन्तरात्मा का नक्शा बनेगा उसकी बाहर की दृष्टि गोण रहेगी ओर उसका ध्यान अन्तरदृष्टि को विकसित करने मे रहेगा। आप मेरे कथन को केवल ऊपर–ऊपर से ही न पकड ले कि महाराज ने कह दिया–बाहर नही भटकना तो हम घर के दरवाजे बन्द कर ले। बाहर नहीं जाने का मतलब है–भाव से बाहर नही जाना। अन्तरदृष्टि बाहर जाता भी है तो घर का ख्याल रख कर जाता है।

मै जरा आपसे पूछ लू कि आप कहा परिभ्रमण कर रहे है ? परिभ्रमण चाहे कही कर रहे हो पर यदि अन्तरात्मा का ख्याल रख लिया और फिर किसी दूसरे–दूसरे काम मे भी लग गये तो वहा आवारापन की स्थिति नही कही जायगी। आपको हाथ, पैर नाक मुह कान आदि बन्द नही करने है, उनमे सशोधन करना है। आवारापन छोडकर अन्तर–आत्मा की तरफ मुडना है।

जहा बहिरात्मा की भावना होती है वहा क्या नक्शा बनता हे, इसका नतीजा कुछ कथाभाग के प्रसग से भी देखा जा सकता है।

बन्धुओ ! नल राजकुमार नल नरेश बन चुका था। नल नरेश कितना शक्तिशाली था इसका थोडा जिक्र कल मेंने रखा कि उन्होने कदम्बक महाराज को जो सदा बहिरात्मा मे डोल रहा था, सम्पत्ति को ही सब कुछ समझ कर चल रहा था, सत्ता के रग मे रगा रहना चाहता था उसकी नल नरेश से टक्कर हुई तो वह बाहरी आत्मा से हटकर अन्तरात्मा के स्वरूप मे आ गया तो नल महाराज को भी जीत लिया। वह कदम्बक जब तक बहिरात्मा था तब तक कुछ गर्व रखता था कि मै इस बाह्यशक्ति से नल को परास्त कर अधीन कर लूगा लेकिन नल की जब टक्कर हुई तो उसको महसूस हुआ कि में जिन बाह्य पदार्थो पर गर्व कर रहा था वे बेकार हे। इन साधनो से मे नल नरेश को झुका नही सकता। नल को झुकाने के लिए मुझे अन्तर की शक्ति को सभालना होगा। इत्यादि सोचकर वह अन्तरात्मा की पोशाक सजा लेता हे तो नल भी उसके चरणो मे झुक जाता ह। क्योकि उस

समय तक कुसगत का पूरा असर नही हो पाया था। बीच मे यत्किचित् हुआ था लेकिन पूर्व के सस्कार प्रबल होने से वह कुसगत का यत्किचित् असर भी ढीला पड गया और कदम्बक महाराज को अन्तरात्मा की साधना मे देखकर नतमस्तक हुआ और अच्छा समझने लगा।

हा, तो आपको ध्यान मे रखना है कि बहिरात्म–स्वरूप एक स्वार्थी पुरुष नल नरेश के साथ लग गया था। दुष्टमति रखने वाला वह चद चादी के टुकडो के लिए नल महाराज को कुव्यसन मे डाल रहा था। कुबेर भी बहिरात्मा के कारण डोल रहा था। नल नरेश को दुष्टमति मित्र पर इतना विश्वास हो गया कि हमारे शरीर दो हैं पर मन एक है।

अब दुष्टमति ने सोचा–मुझे आगे का कार्य करना चाहिये। इस भावना से वह जगल मे से ऐसे फल लाया जो दिखने मे बहुत ही बढिया थे। जिनकी मधुर सुगन्ध फैल रही थी। महाराज नल के सामने फल उपस्थित करके कहा–राजन्पति ! आपने जिन्दगी मे ऐसे मधुर फल नही खाये होगे। आप इन फलो को ग्रहण कीजिये। नल नरेश को उस दुष्टमति मित्र पर पूरा–पूरा विश्वास तो था ही इसलिए उन्होने उन फलो को खा लिया। फल बडे ही अच्छे लगे। खाये हुए फलो का रस बना और सारे शरीर मे फैल गया। उस रस के शरीर मे फैल जाने से उनके ज्ञानतन्तु और शारीरिक शक्ति कमजोर बन गई। ससार के अन्दर कई तरह के पदार्थ होते है, कुछ शुभ फल देने वाले होते हैं और कुछ जीवन की शक्ति का ह्रास करने वाले होते है। कुछ स्फूर्ति लाने वाले होते है तो कुछ जीवन–रस को सुखाने वाले होते है।

जब नल नरेश के ज्ञानतन्तु ढीले होने लगे तो व्यसनो का घेरा बढने लगा। अब महाराज को दूसरी चीजे कम पसन्द आने लगी। वह दुष्टमति साफ कहता–महाराज ! आप अभी युद्ध करके पधारे हैं तो कुछ विश्रान्ति लेनी चाहिये और मादक द्रव्य लेने चाहिये। इससे युद्ध की थकावट हट जायगी। दुष्टमति उन्हे ऐसा समझा–समझा कर मदिरा और दूसरी–दूसरी चीजे देने लगा। अब नशे की मात्रा भी

बढने लग गई। किसी नशे का एक बार प्रयोग किया जाय तो मस्तिष्क की शक्ति एक वक्त उस पदार्थ को पसद नही करने का सकेत करती है और कुछ आन्तरिक झटका लगता है फिर भी वह नहीं समझ कर उसका पुन सेवन करता है तो फिर वह शक्ति भी झटका देना छोडकर उसके अनुकूल बनती जाती है। यही कारण हुआ कि उनका दिमाग धीरे–धीरे नशे की स्थिति के कारण ठीक सोचने मे सक्षम नहीं रहा। ऐसे नक्शे आज भी आप देखते और सुनते होगे।

मैं उडीसा प्रदेश मे था। वहा मुझे उन भाइयो का कुछ नक्शा समझने का प्रसग आया। मैंने वहा के किसी भाई से पूछा–भाई, यहा पानी बहुत है और लोग बेचारे मेहनत भी करते मालूम दे रहे है पर इतनी गरीबी क्यो ? इनके पास पूरा खाने को अन्न नही, पहनने को पूरे वस्त्र नहीं ? उस भाई ने कहा–महाराज ! ये कमाई तो करते है पर इनकी बुद्धि काम नहीं करती। एक समय का भी खाना पडा है तो भविष्य के लिए सोचने का प्रसग इनमे कम रहता है। वे खेत जाएँगे, दौडेगे तो 5–6 रुपया कमा लेगे किन्तु वे पहले दारु के ठेकेदार की दूकान पर जाते हैं। ठेकेदार प्रथम बार तो अच्छा दारु पिला देता है। जब उसे नशा आ जाता है तो नशे मे और मागता है कि लाओ। दारु का ठेकेदार देखता है–इसको प्रत्येक समय अच्छा दारु दिया जाय तो यह मर जायगा। तो वह दारु की जगह पानी भरकर देता है। वह तो उसे भी नशे की हालत मे दारु समझ कर पीता है। तो ये लोग ठेकेदार के चगुल से बाहर आने वाले नहीं।

वहा का ही नहीं और–और जगह का भी प्रसग मेरे सुनने मे आया। जो जितना नशैला पदार्थ सेवन करने वाला है प्राय उसका जीवन उतना ही डावाडोल होगा। आपको यह दशा वर्तमान युग मे भी मिल सकती है।

नल नशे और दुर्वासनो मे पडकर अपने ज्ञानतन्तुओ की शक्ति को धीरे–धीरे नष्ट कर रहा था। उसका कुछ समय तक तो लुक–छिप कर कार्य हो रहा था पर जब अधिक मात्रा बढ गई तो महारानी को भी ज्ञात हुआ कि मेरे पतिदेव की स्थिति व्यसनो की ओर

अधिक बढ गई है। मेरे रहते उनकी दुर्दशा हो तो मै अपने कर्तव्य से च्युत होती हू। मेरा कर्तव्य है कि अपने पतिदेव को मै ठीक रास्ते पर लाऊ। तभी मेरा धर्मपत्नी कहलाना सार्थक होगा।

दमयन्ती अपने पिता के घर, जब वह अविवाहित थी, तब से ही आत्मिक स्वरूप के साथ कर्तव्याकर्तव्य को पहचानती थी। वह शास्त्रो की भी ज्ञाता थी। विवाह होने के पश्चात् भी उसने ज्ञानादि मे परिपक्वता लाने का प्रयास किया, पर उनको विस्मृत नही होने दिया। अत इस समय वह नम्र भाव से पतिदेव के सामने आकर बोलती है–नाथ, आप किस रास्ते लग रहे है ? आप अभी युद्ध करके आये, एक राजा को मुनि बना दिया। आप उनके चरणो मे नतमस्तिष्क होकर आये हैं लेकिन यह ऐसी विपरीत दशा क्यो बन रही है ? नाथ, आप जरा सभलिये। इस स्थिति से न आपका हित होता है न मेरा। आपने मेरे साथ क्या प्रण किये थे ? आपने प्रण किया था कि किसी भी नये कार्य की प्रवृत्ति होगी तो मै तुम्हारी सलाह सहमति लूगा। आप जीवन मे दुर्व्यसनो को स्थान दे रहे है। इन दुर्व्यसनो के सेवन करने की क्या अनुमति ली।

नल नरेश कहने लगा–ये सब बाते कुछ नही है, धार्मिक बाते ढोग है। ये तुम्हारी बाते अपने पास रहने दो। मन तो कही दौडता है और बाते धर्म की करो इसमे क्या रखा है ? तुम सामायिक करके बैठ जाती हो, क्या मन ठिकाने रहता है ?

नल नरेश को ये सस्कार दुष्टमति से मिले इसलिए वह कुतर्क देकर स्वय नास्तिक बनने जैसी बाते कर रहा है। आजकल भी ऐसे विचार अधिकाश लोगो के मस्तिष्क मे होगे। आप जिस सामायिक अवस्था मे बेठते है और वर्तमान मे बैठे है उसमे मन वचन काया को किस–किस मात्रा मे रखते हैं ? यद्यपि आप सामायिक दो करण तीन योग से करते हैं। आप मन से पाप करे नही, करावे नही। वचन से पापकारी शब्द बोले नही, किसी से बोलावे भी नही। काया से पाप करे नहीं करवाएँ नही।

आप तटस्थता से विचार कीजिये। वर्तमान मे मन मे ऐसी कल्पना उठती ह क्या कि मे पाप करू ? आप मुह से पाप करने को

कहते हैं क्या ? आप तो नही कहते पर आपका लडका आ गया और वह पूछता है—पिताजी, रसोई क्या बनवाऊँ तो क्या आप चलाकर कहेगे कि अमुक रसोई बनाओ ? ऐसा आप नही कहेगे क्योकि सामायिक की अवस्था मे पापकारी कार्य न करते हैं, न करवाते हैं दोनो करण सुरक्षित हैं। आग वगैरह जलाकर रसोई भी नही करते हैं और न इस तरह से करवाने का विचार ही करते हैं। आपका वचन सम्बधी त्याग का योग (पाप नही करना, नही कराना) सुरक्षित है। काया सम्बन्धी त्याग का योग भी उसी तरह से सुरखित है। अब रहा मन का सवाल। मन का बहुत बडा दायरा है। आपने सब दायरे को एक साथ नहीं रोका। 48 मिनट के लिए आपने प्रतिज्ञा ली। इन 48 मिनटो मे जो परिणाम आते हैं वे कैसे आते हैं ? इसका मैं एक रोज सकेत भी दे गया। सामायिक मे मन से पाप करना नही करवाना नही। इन दो करणो की ही तो 48 मिनट की प्रतिज्ञा है। आप बैठे है और मन मे भावना आई कि मुझे दुकान का कार्य चालू कर देना चाहिये। भावना तो आई पर सामायिक मे बैठे—बैठे ही दूकान का कार्य का चालू कर दू, इस प्रकार की भावना नही आई। 48 मिनिट सभाप्त होने के बाद मैं दुकान का कार्य चालू करू इस प्रकार की भावना आई। प्राय सोचने पर ज्ञात होगा कि 48 मिनट के अन्दर मे पापकारी कार्य करने की सक्रिय भावना नहीं बनती क्योकि सामायिक की सीमा मे वह यही सोचेगा कि सामायिक का काल पूरा करके अमुक ससारी काम करने के लिए लडके को भेजू या मै जाऊ ? तो 48 मिनट तक सामायिक के काल मे बैठे हुए उसके मन मे पाप करू या कराऊ यह भावना नही बनती। इस दृष्टि से वह सुरक्षित रह गया। 48 मिनट के बाद की कल्पना चल रही है। वह भी न आवे तो सोने मे सुगन्ध है।

आप भी सामायिक कर रहे हैं। कदाचित् आपके मन मे थोडी कमजोरी हो तो उसके अनुसार फल की कुछ कटौती कर दीजिये। मन की बात का कम फल लीजिये पर सामायिक का फल व्यर्थ जाने वाला नहीं है। मन को भी रोकने के लिए अभ्यास कीजिये अभ्यास करेगे तो एक रोज मन उतना भी सोचने मे नहीं जायगा। मन को

आप एक रोज मे ही काबू मे लाना चाहे तो नही ला सकते।

पर कोई भाई सिर्फ यही सोचे कि मेरा मन तो भटकता है फिर सामायिक मे क्या लगेगा ? जब मन नही लगेगा इससे तो नही करना अच्छा है। तो क्या छूटे रहने से, या सामायिक नही करने से मन वश मे आ जायगा ? नही आयेगा।

मन दौड रहा है। उसे वश मे करने के लिए मेहनत करनी पडेगी, अभ्यास करना पडेगा। एक विद्यार्थी सोचे–मैं पहली कक्षा मे तो भर्ती नही होऊ और एम ए पास करू। तो क्या वह बिना पहली कक्षा और उसके बाद की कक्षाओ मे गये ही एम ए की योग्यता प्राप्त कर पायेगा ? एम ए की योग्यता प्राप्त करनी है तो प्रथम कक्षा से धीरे–धीरे आगे बढना होगा और बढते–बढते एम ए तक भी पहुँचा जा सकता है। अत नास्तिक–मतियो की तरह बुद्धिमान मनुष्यो को कभी नही सोचना चाहिये।

नल प्रारम्भ से तो विवेकवान था पर दुष्टमति के ससर्ग से एव कुव्यसनो के कारण, जैसे दुष्टमति बिना विवेक के जो मन मे आया बोल देते है,ऐसे ही नल नरेश भी दमयन्ती को कह गया कि क्या रखा है इन धर्म की बातो मे। उसके तो मस्तिष्क की नसे ढीली पडी थी। पर आपके मस्तिष्क की नसे तो ढीली नही हैं ? आप सब कुव्यसन सेवन करने वाले तो नही है। क्योकि आपको सत्सगत का बराबर सयोग मिलता रहता है। लेकिन सत्सगत मे आने वाले विरले हैं और कुसगत मे रहने वाले अधिक है। अत आपकी भावी सन्तान कुव्यसन मे न पड जाय इसका पूरा–पूरा ध्यान रखने की आवश्यकता है।

दमयन्ती सोच रही थी–गजब हो गया ! इनको कैसी दुष्ट सगत लगी जिससे इनकी बुद्धि मलीन बन गई है, विवेकशक्ति क्षीण हो गई है। पर मुझे धैर्य के साथ प्रेमपूर्वक इनके जीवन को सम्भालना है।

उधर दुष्टमति नल को फुसलाने की दृष्टि से अनेक तरह के उपाय करने लगा। वह स्वय तो नशा कम करता था क्योकि वह जानता था कि मैं यदि अधिक नशा सेवन करता ही गया तो मेरी बुद्धि

लुप्ति हो जायगी और मैं षड्यत्र सोचने मे अक्षम हो जाऊगा। वैसी स्थिति मे कुबेर के साथ किए हुए वायदे को मैं पूरा नही कर पाऊगा। वह चालाक था। उसे किसी प्रकार के भी षड्यत्र से कुबेर का काम करना था और उससे उसका भी काम बन रहा था। वह चालाकी के साथ धीरे–धीरे नल नरेश को बर्बादी के रास्ते पर आगे बढा रहा था।

दुष्टमति अनेक तरह की बाते बना–बना कर महाराज से कहने लगा–आप राजाधिराज राजा है। आपका जीवन बडा अमूल्य है। आपको इस शरीर के प्रति सदा ध्यान रखना चाहिये। ये लोक परलोक सम्बन्धी बाते आपके मस्तिष्क मे आ रही हैं सो ठीक नही। मैं आपका ही हित चाहता हूँ, आप तो जितना सभव हो उतना पाच इन्द्रियो के विषयो का सेवन करिये और इसमे पीछे मत रहिये

नल नरेश इतने समय व्यसनो मे पडा जरूर था पर अति बुरे व्यसनो से बच रहा था। दुष्टमति सोच रहा था कि जब तक अति कुव्यसनो की तरफ इनकी दृष्टि नही जायेगी तब तक इनकी शक्ति केन्द्रित रह सकती है। इसलिए इनकी शारीरिक शक्ति को नष्ट करना चाहिये। अब धीरे–धीरे नल नरेश के जीवन मे विषय सम्बन्धी कुव्यसन भी प्रवेश करने लगे।

दमयन्ती सोचने लगी–अब मैं क्या करू ? कैसे समझाऊ ? उसने सोचा–मेरे मन मे कोई कमजोरी रही हुई है इसलिए यह नक्शा बना। मैं अपनी आत्म–शक्ति को पूरी विकसित नही कर पाई। मेरे जीवन मे कोई त्रुटि रह गई है। जब तक मुझ मे कोई त्रुटि है तब तक दूसरो की त्रुटि नहीं निकाल पाऊगी। मैं अपने जीवन का समभाव से अन्त करण मे चिन्तन करू। वह एकान्त स्थान पर जाकर प्रभु को नमस्कार करती है और अन्तर का चिन्तन करती है कि मैंने जन्म लिया और जब से होश सम्भाला उस स्थिति से लेकर आज दिन तक मेरे जीवन मे कोई पाप तो नहीं हुआ। वह चिन्तन करती हुई इसी प्रश्न को मन मे बैठा कर सोचती है। उसे चिन्तन के क्षणो मे आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। वह स्वय के जीवन का अवलोकन कर रही है।

उधर महाराज सोचने लगे कि मुझे साथी बडा अच्छा मिल

गया। साथी भी सोच रहा था–मेरी दाल अच्छी गल रही है। जिस रोज मेरा काम पूरा हो जायगा उस रोज मे अपने को धन्य समझूगा। दुष्टमति वहिरात्मा था जो नल जैसे पवित्र अन्तरात्मा को भी वहिरात्मा बना रहा था।

आप भी अपने निज घर की ओर निगाह डालिये कि कही मैं व्यसन तो सेवन नही कर रहा हूँ ? यह भी सोच लीजिये कि कही आपकी सगति दुष्टमति की तो नही बन रही है। आप कथा भाग से जान चुके है कि नल जैसा अन्तरात्मा भी किस प्रकार वहिरात्मा के ससर्ग से गिर जाता है। मेरा तो वस्तुस्थिति रख देने का कर्तव्य है। निर्णय तो आपको अपने लिये करना है। आप अपने जीवन को देखकर अनुभव कीजिये और अपने जीवन को सद्गुणो की ओर बढाते हुए सत्सगति के माध्यम से अपनी आत्मा को जानने की कोशिश करेगे तो अपने जीवन को मगलमय बना सकेगे।

इसी शुभ भावना के साथ